अंक : १२०

अक्तूबर - दिसंबर २०१२

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

डॉ. विवेक द्विवेदी, मणिका मोहिनी, मधु अरोड़ा,
ताराचंद मकसाने, नीतू सुदीप्ति "नित्या"

सागर-सीपी
डॉ.आर.पी.शर्मा "महर्षि"

•

आमने-सामने
द्वितेश व्यास

१५ रुपये

अक्तूबर-दिसंबर २०१२

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

कहानियां

पलायन... – **डॉ. विवेक द्विवेदी** ७
तो यह बात है ! – **मणिका मोहिनी** १५
रिश्तों की भुरभुरी ज़मीन – **मधु अरोड़ा** १९
प्रत्यावर्तन – **ताराचंद मकसाने** २५
सरोकार अपने-अपने – **नीतू सुदीप्ति "नित्या"** ३३

लघुकथाएं

सौदा / **शुभदा पांडेय** १४
कल्पना राम राज्य की / **आनंद बिल्थरे** १८
डस्टबिन / **नरेंद्र कौर छाबड़ा** ३१
रूप जाल / **उर्मि कृष्ण** ३५
टैलेंट-हंट, सच / **आलोक कुमार सातपुते** ४२

ग़ज़लें / कविताएं

ग़ज़ल / **तारकेश्वर शर्मा** ११
बुधिया / **राजेंद्र निशेश** १४
नाकामी / **श्रीरंग** २३
ग़ज़लें / **हितेश व्यास** ३९
ग़ज़ल / **सच्चिदानंद "इंसान"** ४१
ग़ज़लें / **आर. पी. शर्मा "महर्षि"** ४५

स्तंभ

"कुछ कही, कुछ अनकही" २
लेटर बॉक्स ४
"आमने-सामने" / **हितेश व्यास** ३७
"सागर-सीपी" / **आर. पी. शर्मा "महर्षि"** ४३
"बाइस्कोप" (*सविता बजाज*) / **अभिलाष** ४७
पुस्तक-समीक्षा ४९

आवरण चित्र : नमित सक्सेना
मार्सी बांध से मार्सी पहाड़ का दृष्य (न्यूयॉर्क स्टेट का उत्तरी भाग).
चित्रांकन : सुभाष केकरे, कोटा (राज.)
मो.९४१३९४११८३

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
अशोक वशिष्ठ
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
Namit Saksena,
137 W 13th St. #2R,
NEW YORK NY 7871
(M) 347-237-7334
Naresh Mittal,
(M) 845-304-2414

●**"कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध** ●
www.kathabimb.com

e-mail : kathabimb@yahoo.com

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कुछ कही, कुछ अनकही

देखते-देखते एक वर्ष और बीत गया. यह, वर्ष २०१२ का चौथा अंक (१२०) है. जब तक यह अंक पाठकों के पास पहुंचेगा जनवरी २०१३ का पूर्वार्ध बीत चुकेगा. "कथाबिंब" परिवार की ओर से सभी लेखकों, पाठकों और विज्ञापनदाताओं को नव-वर्ष की अनेक शुभकामनाएं.

पिछले वर्षों की तरह, अंक के अंतिम पृष्ठ पर **"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार"** हेतु अभिमत भेजने के लिए "मत-पत्र" दिया जा रहा है. पाठकों से अनुरोध है कि वे अधिक से अधिक संख्या में अपने अभिमत हमें भेजें. अपरोक्ष रूप में इस आयोजन से हमें आपकी रुचि का भी पता लगता है कि पाठकों को किस तरह की कहानियां अच्छी लगती हैं. उसी के अनुरूप कहानियों के चयन में मदद मिलती है. "कथाबिंब" के एक पाठक ने जो अपने आपको महान कहानीकार मानते हैं कई लेखकों को एसएमएस भेजा है कि "कथाबिंब" में सिर्फ़ अपने खेमे वालों की रचनाएं छपती हैं. इससे अधिक हास्यापद बात हो ही नहीं सकती. ऐसे आरोप पहले भी लगे हैं. दरअसल, शुरू से पत्रिका का मुख्य उद्देश्य नये रचनाकारों को आगे लाना है. बहुत बार संभावनायुक्त अधकचरी रचनाओं को भी परिमार्जित व संशोधित करके प्रकाशित किया गया है. इसके कई उदाहरण दिये जा सकते हैं. किंतु यह उम्मीद करना कि संपूर्ण कहानी को पुनर्लेखित करके छापा जाये तो यह आग्रह सर्वथा अनुचित ही माना जायेगा. आज "कथाबिंब" के पाठक देश के कोने-कोने में हैं. पत्रिका के बहुत से रचनाकारों को सुखद आश्चर्य होता है जब उनके पास पत्र व फ़ोन द्वारा तमाम प्रतिक्रियाएं आती हैं. सभी पाठकों से विनम्र अनुरोध है कि कृपया अपनी इस भागीदारी को और सक्रियता से ज़ारी रखें. इसी संदर्भ में एक घटना का उल्लेख करना चाहूंगा. पिछले माह हम पति-पत्नी लखनऊ से मुंबई की यात्रा कर रहे थे. साथ में भुसावल में कार्यरत एक रेल्वे अधिकारी थे. उन्होंने अपना नाम बताया राजेश सिंह. जब मैंने उन्हें अपना परिचय दिया और "कथाबिंब" के बारे में बताया तो यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि वे पत्रिका से पहले से परिचित हैं. उनका शिक्षा-काल पटना में गुज़रा था और वहीं किसी लायब्रेरी में जाकर वे नियमतः "कथाबिंब" पढ़ते थे! परिचय होने के बाद हम दोनों अनेक विषयों पर चर्चा करते रहे.

●

अब इस अंक की कहानियों का ट्रेलर -- प्रथम कहानी *"पलायन..."* (डॉ. विवेक द्विवेदी) का बीरन एक सीधा-साधा इंसान है. मेहनत-मशक्कत करके गांव में ही रहकर घर-परिवार का भरण-पोषण करना चाहता है. किंतु मज़बूरी में उसे गांव से पलायन करना पड़ता है. लेकिन देश की राजधानी दिल्ली पहुंचने पर, जहां देश के प्रधानमंत्री रहते हैं, सारी उम्मीदों पर पानी फिर जाता है. अगली कहानी *("तो यह बात है !")* के माध्यम से सुश्री मणिका मोहिनी बरसों बाद "कथाबिंब" के पाठकों के सामने प्रस्तुत हैं. कहानी की पृष्ठभूमि दिल्ली है. नायिका पड़ोस में रहने वाले पति-पत्नी के हर दिन के ज़ोर-ज़ोर से लड़ने से तंग है. इस लड़ाई के पीछे के कारणों को जानना चाहती है! अगली कहानी *"रिश्तों की भुरभुरी ज़मीन"* की लेखिका मधु अरोड़ा अपेक्षाकृत नयी कहानी-लेखिका हैं. एक बार फिर इस कहानी में, अपरोक्ष रूप से ही सही, दिल्ली हमारे सामने उपस्थित है. रिंकी का पति टूर पर बारबार दिल्ली ही क्यों जाता है ? इस बात को लेकर पति-पत्नी में जब देखो झगड़ा होता रहता है. रिंकी के मन में कई शंकाओं-कुशंकाओं का जन्म होता है. आख़िर एक दिन सच सामने आ ही जाता है ! *"प्रत्यावर्तन"* भाई ताराचंद मकसाने की पहली कहानी है. आप शुरू में काफ़ी समय तक पत्रिका के संपादन में सहयोग देते रहे थे. कहानी में ताराचंद वर्तमान की एक ज्वलंत समस्या लेकर आये हैं कि पूरा जीवन मेहनत करके पति-पत्नी ने लड़के को पढ़ाया और हमेशा अच्छे संस्कार देने का प्रयास किया, इस सबके बावजूद लड़का विदेश में जाकर बस गया और आज जीवन के संध्या-काल में दोनों के पास कोई नहीं है. बरबस मन यह सोचने पर विवश है कि कहां कमी रह गयी. यह "डायलेमा" आज अनेक परिवारों के मन में पैठा रहता है. अंतिम कहानी *"सरोकार अपने-अपने"* की लेखिका नीतू सुदीप्ति "नित्या" का नाम भी "कथाबिंब" के पाठकों के लिए थोड़ा नया है. नायिका अलका अपना एक छोटा-सा स्टोर चलाती है. स्टोर में ज़्यादातर सामान महिलाओं की रोज़मर्रा की ज़रूरतों का होता है. लेकिन अक्सर ग्राहक महिलाएं बहुत अधिक व्यक्तिगत प्रश्न करने लगती हैं जिनका उनसे कोई सरोकार नहीं होता. पर अलका करे तो क्या करे ?

●

हर रोज़ सुबह अख़बार हाथ में आते समय उम्मीद होती है कि कोई अच्छी ख़बर पढ़ने को मिलेगी. पर ऐसा नहीं होता. सारी दुनिया में, अनेक देशों में न जाने किन-किन मुद्दों को लेकर उथल-पुथल मची हुई है. माया के एक प्राचीन कैलेंडर के अनुसार गत २१ दिसंबर को दुनिया ख़तम हो जानी चाहिए थी. किंतु ऐसा नहीं हुआ. अपने देश की बात करें

तो भी आशा की कोई किरण नज़र नहीं आती. दिल्ली की बलात्कार की घटना के बाद कुछ समाचार-पत्रों ने एक कॉलम ही देना शुरू कर दिया है : "आज के बलात्कार." इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जिस नृशंसता और बर्बरता से पूरी घटना को अंजाम किया गया उसकी भर्त्सना करनी चाहिए. यही कारण था कि दूसरे दिन से ही दिल्ली के ख़राब मौसम के बावजूद भी सोशल नेटवर्किंग के माध्यम से एक स्वतःस्फूर्त आंदोलन शुरू हो गया. मीडिया वालों ने एक अच्छा काम यह किया कि लड़की के नाम और परिवार की जानकारी गुप्त रखी. नहीं तो जैसा अक्सर होता है कि घर पहुंचकर पूछताछ शुरू हो जाती, "आपको कैसा लग रहा है !" किसी अख़बार वाले ने उसे दामिनी कहा और किसी ने उसे निर्भया का नाम दिया. किंतु सरकारी तंत्र पूरी तरह विफल रहा. उधर अस्पताल में दामिनी जीवन और मरण के मध्य झूल रही थी और इधर पुलिस वाले प्रदर्शनकारियों पर डंडे भांझ रहे थे और पानी की "कैननों" से गोले बरसा रहे थे. केंद्र या दिल्ली सरकार का एक भी नुमांइदा कहीं नहीं दिखाई दिया. राजकुमार राहुल का भी कहीं अता-पता नहीं था. हर बीतते दिन के साथ आंदोलनकारियों की संख्या बढ़ती जा रही थी. अंततः इंडिया गेट के पास के इलाके को एक छावनी में तब्दील कर दिया गया. एक रात मालूम पड़ा कि दामिनी को इलाज़ के लिए सिंगापुर भेज दिया गया है. आंदोलन थोड़ा शांत हो गया. इस संदर्भ में भी अफ़वाह फैली कि दामिनी का सिंगापुर भेजना एक मास्टर प्लान था. उसकी मृत्यु सफ़दरगंज अस्पताल में ही हो गयी थी. सिंगापुर भेजने की ख़बर से देशवासियों को यह लगेगा कि सरकार दामिनी के लिए कितना कुछ कर रही है. दिल्ली में उसके मरने का समाचार आग में घी का काम करता. कुछ भी हो सकता था. थोड़े दिन बाद घोषणा की गयी कि विदेश में ही उसका देहांत हो गया है. तब तक काफ़ी कुछ शांत हो गया था.

नवंबर में कुछ इसी तरह की अफ़वाह हिंदू हृदय सम्राट बाल ठाकरे की तबियत को लेकर उड़ी थी. बाल ठाकरे जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था. मुंबई में, बांद्रा स्थित उनके घर को ही अस्पताल में बदल दिया गया था. तीन-तीन नामी डॉक्टर चौबीसों घंटे उनकी निगरानी कर रहे थे. बीच में दीवाली आ गयी. दबी जबान में कहा जा रहा था कि उनका निधन हो गया है किंतु दीवाली का त्यौहार ख़राब न हो इसलिए घोषणा नहीं की जा रही है. बाद में रविवार की छुट्टी वाले दिन घोषणा की गयी. हालात पूरी तरह नियंत्रण में रहे और किसी भी प्रकार की अप्रिय घटना नहीं घटी.

दिल्ली में हुई बलात्कार की घटना दिल दहलाने वाली है. आंदोलन ने जनमानस में ऐसे अपराधों के प्रति जागरूकता फैलाने का काम अवश्य किया है. लेकिन क्या पहले कभी बलात्कार की घटनाएं नहीं होती रही हैं. इसमें विशेष बात यही है कि यह दिल्ली में घटी और मीडिया ने कवरेज़ किया. आप दैनिक जागरण, आज, अमर उजाला, दैनिक भास्कर जैसे समाचार-पत्रों के देश के विभिन्न जिलों के दैनिक संस्करण पढ़िए. गांव-कस्बों, छोटे शहरों की ख़बरों में बलात्कार की न जाने कितनी ख़बरें आये दिन पढ़ने को मिलती हैं. यदि हम चाहते हैं कि कहीं भी इस तरह की घटनाएं न हों तो हमें बहुत ही गंभीरता से मूल कारणों पर दृष्टि डालनी होगी. पहली शिक्षा व्यक्ति को परिवार से मिलती है. छुटपन से बच्चे को बताया जाता है कि क्या ग़लत है क्या सही. लेकिन वास्तविक जीवन में यदि बालक पाता है कि उसके पालक ही कर्तव्यच्युत हैं तो वह भी ग़लत रास्ते पर चलने लगता है. यही स्थिति स्कूल-कॉलेजों की है. हमारे सामने कोई आदर्श नहीं हैं. युवकों में नैतिक मूल्यों का सर्वथा अभाव है. हर चीज़ उपलब्ध है बस आपके पास पैसा होना चाहिए. अगर नहीं है तो ग़लत तरीक़े अपनाइए. पकड़े गये तो भी क्या होगा ? क्या फ़र्क पड़ता है, सालों मुकदमा चलेगा. ले-देकर छूट जायेंगे. चरस, गांजा, विदेशी ड्रग्स, शराब सब उपलब्ध है. संभव हो तो इलाके के किसी बाहुबली के संरक्षण में आ जायें. आपका कोई भी बाल बांका नहीं कर सकता. पुलिस वीआईपी लोगों की सुरक्षा में तैनात है. आम आदमी की क्या बिसात ?

●

दिल्ली के बलात्कारियों को कड़ी से कड़ी सजा मिलनी चाहिए इस संबंध में दो राय नहीं हो सकतीं. किंतु बलात्कार ही क्यों, हत्या, चौरी-डकैती, गवन, देशद्रोह, भ्रष्टाचार ये सब भी कोई छोटे अपराध नहीं हैं. क़ानून में सबके लिए सज़ा है. लेकिन क़ानून और व्यवस्था राज्य सरकार के हाथ में है. राजनीतिक हस्तक्षेप के चलते बड़े से बड़े अपराधी छूट जाते हैं. छोटे कोर्ट से जब तक मुकदमा उच्चतम न्यायालय में पहुंचता है तब तक अधिकांश गवाह भगवान को प्यारे हो गये होते हैं. अगर सरकार अपराध रोकने के लिए गंभीर है तो हर मुकदमे के निर्णय आने की अधिकतम समय-सीमा तय होनी चाहिए. यदि ज़जों की कमी है तो तुरत फुरत अधिक न्यायाधीशों की बहाली करनी चाहिए, अधिक न्यायालय बनाने चाहिए. पुलिस फोर्स में भी अधिक से अधिक लोगों को नौकरी देनी चाहिए. इससे एक ओर लोगों में सुरक्षा की भावना के साथ बेरोज़गारी की समस्या का भी किसी सीमा तक समाधान होगा.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ मैं 'कथाबिंब' का नियमित पाठक हूं. यू तो इसमें शामिल अधिकतर कहानियां स्तरीय और पठनीय होती हैं, पर मैं यहां जुलाई-सितंबर २०१२ अंक में शामिल डॉ. रमाकांत शर्मा की कहानी 'खारा पानी-मीठा पानी' का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूंगा. यह कहानी मन को छूती है और आत्मा को झकझोर कर रख देती है. इतनी सशक्त और मर्मस्पर्शी कहानी प्रकाशित करने के लिए बधाई. हर शहर में अच्छे और बुरे लोग होते हैं. अच्छे लोगों का प्रतिशत भले ही कम हो, पर वे ही किसी शहर को रहने लायक बनाते हैं. यह भी सच है कि जिस प्रकार के लोगों से साबका पड़ता है शहर की छवि वैसी ही बन जाती है.

मैं बीएआरसी से सेवानिवृत्त हुआ हूं. इस संदर्भ में मुझे वर्ष १९८६-८७ की एक घटना याद आती है. हमारे विभाग में एक नये इंज़ीनियर आये थे. उनसे मिलने के लिए आगरा से उनका छोटा भाई मुंबई आया हुआ था. अचानक वह बहुत बीमार पड़ गया और एक प्राइवेट अस्पताल में इलाज़ के दौरान उसका निधन हो गया. सुबह दस बजे मुझे इसकी सूचना मिली तो मैं तत्काल ही अपने एक दोस्त के साथ अस्पताल पहुंच गया. वहां जाने पर मालूम हुआ कि अस्पताल का बिल चुकाने के लिए पैसे न होने के कारण उसे अपने भाई का पार्थिव शरीर नहीं मिल पा रहा था. मुंबई में वह और किसी को नहीं जानता था. इसलिए बहुत परेशान था. हमने उसे ढांढस बंधाया और तुरंत ही अपने दोस्तों से संपर्क किया. उस नये इंज़ीनियर को कोई नहीं जानता था. फिर भी सिर्फ़ तीन घंटे में साठ हज़ार रुपये इकट्ठा हो गये. हमने अस्पताल के बिल की अदायगी के बाद पार्थिव शरीर को एयरपोर्ट तक पहुंचाने की व्यवस्था की और उसी दिन शाम को पांच बजे तक उन्हें हवाई जहाज से दिल्ली होते हुए आगरा पहुंचने का इंतज़ाम किया. दिल्ली से आगरा तक वैन से जाने और बाद के ख़र्चों के लिए उन्हें पर्याप्त रक़म दी और सहायता के लिए एक आदमी भी उनके साथ कर दिया. बाद में धीरे-धीरे करके उस इंज़ीनियर ने सारी रक़म चुकता की.

मुझे लगता है, ज़रूरत पड़ने और पता चलने पर लोग सहायता के लिए अवश्य आगे आते हैं. इसलिए ऐसी विकट स्थिति में सहायता मांगने में संकोच भी नहीं करना चाहिए. आपस में संवाद के रास्ते खुले रखने बहुत ज़रूरी हैं, मुंबई जैसे शहर में यह कठिन तो है, पर इस दिशा में किये गये प्रयासों के अच्छे परिणाम निकलने की आशा की जा सकती है. 'खारा पानी-मीठा पानी' के लिए लेखक और आपको बहुत-बहुत धन्यवाद.

आर. के. मोदी,

टी-११/आर एच२/सेक्टर-६, वाशी, मुंबई-४००७०३

▸▸ 'कथाबिंब' अंक ११९ जुलाई-सितंबर २०१२ मिला. डॉ. रमाकांत शर्मा की कहानी 'खारा पानी, मीठा पानी' सर्वश्रेष्ठ लगी. वे पुरस्कृत कहानीकार हैं. कहानी का विस्तार बढ़ गया है, किंतु खटकता नहीं. शैली में आकर्षण है. निष्कर्ष प्रभावशाली है. अपने-अपने अनुभव, अपनी-अपनी धारणाएं. गोविंद उपाध्याय की कहानी 'एक था हीरो'- में अमीर बाप का बेटा ऐसा क्यों बन गया, कुंठा का कारण क्या है, इस पर थोड़ा प्रकाश पड़ता तो कहानी में और जान आ जाती. काज़ एंड इफ़ेक्ट का संबंध तो होता ही है. उसमें संघर्ष की प्रवृत्ति नहीं दिखायी दी. यहां कहानी कमज़ोर हो गयी है. आयु और अनुभव के आधार पर हीरो बदलते रहते हैं. गजेंद्र रावत की कहानी 'दुनियां में...' अच्छी है. कहानी शुरू होने के बाद का अनावश्यक विस्तार खटकता है. फुदकते मजनुओं पर हल्लाबोल के लिए स्वयं नारी को सशक्त बनना ज़रूरी है. 'अन्ना की टोपी' में आम आदमी की टोपी दूसरे लोग पहनकर टोपी में दाग़ लगाते हैं. आंदोलन का हल्का पड़ना भी यह एक कारण हो सकता है. युगेश शर्मा ने पत्रकारिता की पैनी दृष्टि को लेकर यथार्थ का ताना-बाना बुना है. कुंवर प्रेमिल की कहानी 'टेबिल यानी मेज़' उतनी प्रभावशाली नहीं बन पायी. आरंभ अच्छा रहा और शीघ्रता के साथ समाप्त हो गयी. इस अंक की लघुकथाएं अच्छी हैं, पसंद आयीं.

हमेशा की तरह कथाबिंब के स्तंभ पत्रिका के प्राण हैं. संपादकीय में राजनीति की चर्चा ज़रूर होनी चाहिए. राजनीति को हम नहीं चाहते पर राजनीति तो हमको चाहती है. हमेशा पीछे पड़ी रहती है. साहित्य भी तो विचारों का माध्यम ही है. ज्वलंत मुद्दों पर आपके विचार अपेक्षित हैं.

रवींद्रनाथ सिंह चौहान

१-५-६००/१, एफ-१०५, एस.वी.एस.हाईट्स, न्यू मारुति नगर, दिलसुखनगर, हैदराबाद-५०००६०

▶▶ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर २०१२ अंक मुझे मेरे अजीज सहयोगी शादाब भाई के सौजन्य से पढ़ने को मिला. आपके संपादकीय ने काफ़ी प्रभावित किया. वाकई आज का 'आम आदमी' दिग्भ्रमित है. परिवर्तन की चाह है परंतु कोई कारगर राह नहीं दिखती. किंतु इसी आम आदमी का आक्रोश जब हद की सीमा पार कर जाता है, तो वह 'मैंगो मैन' से 'एंग्री मैन' बन जाता है. तब इक़बाल शेख जैसे आततायी टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं. इसी अंक में 'अन्ना की टोपी' और 'एक था हीरो' कहानियां दिल को छू गयीं. लघु रचनाओं में कुंवर प्रेमिल की लघुकथाएं विशेष रूप से पसंद आयीं. सागर सीपी में राजेंद्र गुप्ता को विस्तार से जानने का अवसर मिला. मायानगरी में कई ऐसे विलक्षण प्रतिभा के कलाकार हैं, जिन्हें उनका वांछित 'मुकाम' या 'हक' हासिल नहीं हो सका. राजेंद्र जी ऐसे ही कलाकारों में हैं. चाचा चौधरी से सविता बजाज की अनौपचारिक बतकही भी मार्मिक है.

संजय कुमार

रामआशा सदन, सर्वोदय नगर, पटना-८०००२३

▶▶ 'कथाबिंब' अंक ११९ जुलाई-सितंबर २०१२ मिला. संपादकीय–'कुछ कही, कुछ अनकही', में आपकी टिप्पणी सटीक है. एक अंक से दूसरे अंक की तिमाही में इतने अधिक मुद्दे उपस्थित हो जाते हैं कि यह तय कर पाना मुश्किल हो जाता है कि किस पर टिप्पणी की जाये और किसे छोड़ा जाये. प्रश्न ही प्रश्न हैं, जवाब कौन देगा?

कुंवर प्रेमिल की कहानी 'टेबिल यानी मेज़' पढ़कर ऐसा लगा मानो मेरी अपनी कहानी है. यह कहानी हमारी पीढ़ी के मध्यम वर्ग (नौकरीपेशा) के अतीत का दर्पण है. इस तरह की स्थितियों का सामना हम सभी ने किया होगा. 'एक था हीरो', 'दुनिया में', 'अन्ना की टोपी', 'खारा पानी, मीठा पानी' भी अच्छी रचनाएं हैं और कुछ न कुछ सोचने को विवश करती हैं.

यूसुफ खान 'साहिल', डॉ. अशोक 'गुलशन', मनाज़िर हसन 'शाहीन' की ग़ज़लें व खदीजा खान की कविता- 'चलना है तब तक' भी बेहतरीन रचनाएं हैं. अन्य सामग्री भी पठनीय व अच्छी है.

किशन लाल शर्मा

१०३, राम स्वरूप कॉलोनी, आगरा-२८२०१०.

▶▶ 'कथाबिंब' - ११९ अंक मिला, धन्यवाद. 'कुछ कही, कुछ अनकही' स्तंभ तो हर बार अच्छा ही होता है. इस बार दो कहानियों ने अत्याधिक प्रभावित किया. 'अन्ना की टोपी' : युगेश शर्मा, कहानी 'भ्रष्टाचार की जड़ें' खोदने में सफल रही. युगेश शर्मा जी को साधुवाद.

'खारा पानी, मीठा पानी' (डॉ. रमाकांत शर्मा) दिल को छू गयी. मुंबई जैसे महानगर की आपाधापी के बावजूद समाज में अभी सहृदयता एवं संवेदनशीलता बाकी है. अच्छा लगा. 'बाइस्कोप' में बढ़ती उम्र में चाचा चौधरी की सक्रियता प्रेरणादायक लगी. सविता बजाज को धन्यवाद. इतनी अच्छी शख़्सियत से रू-ब-रू कराने के लिए. 'प्रकृति परक दोहे (मधु प्रसाद) पढ़कर, डॉ. अनंतराम अंनत के दोहों का स्मरण हो आया. मधु प्रसाद जी को भी इतने अच्छे दोहों के लिए धन्यवाद.

महावीर सिंह चौहान

जमालपुर किरत, पो. राजा का ताजपुर, बिजनौर-२४६७३५

▶▶ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर'१२ अंक प्राप्त हुआ. कुंवर प्रेमिल की कहानी, 'टेबल यानी मेज' अंक की उपलब्धि है. जितेंद्र जितांशु की कविता भी अच्छी लगी. आमने-सामने में डॉ. रमाकांत शर्मा की बातचीत वैसी ही लगी जैसे ये व्यक्तिगत रूप से सीधे-सच्चे व्यक्ति हैं. सागर सीपी में राजेंद्र गुप्ता से की बातचीत बड़ी दिलचस्प लगी. श्रीमती सुमन सारस्वत की पुस्तक 'मादा' की समीक्षा भी बहुत बेबाक़ी से लिखी गयी है. इसके लिए श्रीमती संतोष श्रीवास्तव बधाई की पात्र हैं. कुल मिलाकर अंक हमेशा की तरह बहुत प्यारा बन पड़ा है. ख़ूब-ख़ूब बधाइयां. यह आलोचना कतई नहीं है परंतु कभी-कभी 'कथाबिंब' जैसी श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका में हिंदी वर्तनी की अशुद्धि ऐसी ही लगती है जैसे बासमती चावल की, ज़ायकेदार बिरयानी में कंकड़ आ जाये. उदाहरण के लिए कुंवर प्रेमिल की रचना 'टेबिल, यानि मेज़' ... 'यानि' शब्द तो हमेशा दीर्घ ई की मात्रा के साथ ही लिखा जाता है, यदि लेखक ने ह्रस्व मात्रा लगा भी दी तो कृपया आप देख लेते, हम तो 'कथाबिंब' पत्रिका को पढ़ने के साथ-साथ भाषा के संस्कार भी सीखते हैं....

डॉ. अनंत श्रीमाली

सहायक निदेशक, भारत सरकार, गृहमंत्रालय, राजभाषा विभाग, केंद्रीय सदन, ६वां तल, सेक्टर-१०, सी विंग, सीबीडी बेलापुर, नवी मुंबई-४००६१४

▸▸ आपकी पत्रिका 'कथाबिंब' नियमित रूप से प्राप्त हो रही है. आपकी पत्रिका व अन्य कई पत्रिकाएं स्वास्थ्य ठीक न हो पाने के कारण नहीं पढ़ पा रहा हूं. हां जब धूप में होता हूं तो कुछ एक सामग्री अवश्य पढ़ लेता हूं.

डॉ. गोपालदास 'नीरज'

जनकपुरी, मैरिस रोड, अलीगढ़-२०२१०१

▸▸ हमेशा की तरह अंक-११९ भी बहुत सुंदर लगा. 'कुछ कही, कुछ अनकही' स्तंभ आपका हमेशा लाजबाब होता है. बड़े-बड़े लेखकों की रचनाएं इस स्तंभ के सामने फीक़ी हैं, बधाई हो. 'एक था हीरो' जैसी कहानियां हज़ारों हैं जो हमेशा हमारे आस-पास बिखरी रहती हैं सिर्फ़ पात्र बदलते हैं. गोविंद जी ने हीरो की पीड़ा को समझा. काश! ऐसे लोगों का कोई तो भला करे. युगेश जी की कहानी 'अन्ना की टोपी' मुझे बहुत ही बढ़िया लगी. मैं खुद अन्ना जी की भक्त हूं, लेकिन क्या जीवन में कुछ होगा बदलाव! समझ नहीं आता. पहले भी तो भ्रष्टाचार था. फ़ोन नहीं होते थे. एम. टी. एन. एल. वाले ख़ूब पैसा लेते थे फ़ोन का. लफड़े तो सभी करते हैं. बड़े लोगों के बड़े, छोटे लोगों के छोटे. इस गंदगी को हटाना महाकठिन है. न जाने कितने मरेंगे. इस लड़ाई में कौन जाने. अति हो गयी सब चीज़ों की, पहले क्यों नहीं जागे. ख़ैर समस्या बड़ी गंभीर है, हल नज़र नहीं आता. 'खारा पानी.... ' रचयिता रमाकांत शर्मा को बधाई. जीवन का मर्म ख़ूब समझते हैं. लघुकथाएं तो हमेशा बढ़िया होती हैं. कम शब्दों में बड़ी सीख है. कुल मिलाकर अंक बहुत शानदार, लुभावना और रोचक है.

सविता बजाज

पो. बॉक्स-१९७४३, जयराज नगर,
बोरिवली (प.), मुंबई-४०००९१

▸▸ 'कथाबिंब' जुलाई-सितंबर २०१२ अंक कई मायनों में महत्वपूर्ण है. पहले तो संपादकीय ही समीचीन है और फिर अन्य सामग्रियों का चयन भी बढ़िया है. गोविंद उपाध्याय का 'एक था हीरो' कुछ ज़्यादा ही नाटकीयता लिये है, हां, समस्या ज़रूर सटीक है. गजेंद्र रावत की कहानी 'दुनिया में...' में आभा की मां के प्रति आतुरता और आज का समाज कैसा है उसका अच्छा चित्र खींचा गया है. युगेश शर्मा ने अपनी कहानी 'अन्ना की टोपी' में विषय वस्तु तो ठीक ली है परंतु उसे बेवजह तानते गये. जो पढ़ने में अखरता है. कुंवर प्रेमिल और डॉ. रमाकांत शर्मा की कहानियां भी ठीक ही हैं. लघुकथाएं और ग़ज़ल आदि का चयन भी सटीक है. आपके सारे स्तंभ मुझे अच्छे लगते हैं. पत्रिका काफ़ी ज्ञानवर्धक है, बस एक ही कमी खलती है कि विचारोत्तेजक लेख व कहानियों के हिसाब से चित्र भले न हों साहित्य की अन्य विधाओं की सामग्रियों का समावेश तो हो ही सकता है. पत्रिका उत्तरोत्तर प्रगति करे यही कामना है.

शिवनाथ शुक्ल

लिंक रोड, कैंप-२, भिलाई (छ. ग.)-४९०००१

▸▸ कुछ अंतराल के बाद आपकी दीर्घजीवी त्रैमासिक पत्रिका 'कथाबिंब' जुलाई-सितंबर (अंक ११९) २०१२ पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ. युगेश शर्मा की कहानी 'अन्ना की टोपी' सर्वाधिक पसंद आयी. आज के भ्रष्टाचार और तदजनित अवसरवादिता पर एक बेबाक टिप्पणी है. ईमानदार कैसे भ्रष्टाचार की ओर ढकेला जाता है. इस पर एक यथार्थवादी चित्रण है. आज के भ्रष्टाचारी पंक में ईमानदार कैसे संजीवनी का काम कर रहा है. यह एक मार्मिक टिप्पमी है. 'खारा पानी, मीठा पानी' महानगर में भी सहृदयता को रेखांकित करती है. एक था हीरो' एक बिंदास युवा की त्रासदी है. ग़ज़ल, कविताएं, दोहे भी प्रभावित करते हैं. व्यंग्य की कमी ज़रूर खटकती है.

सतीश शुक्ल

ए-१४०१ पटेल हेरिटेज, खारघर,
नवी मुंबई.४१०२१०.

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर २०१२ अंक मिला. आपका संपादकीय 'कुछ कही, कुछ अनकही' पूर्व की ही तरह सशक्त एवं विचारणीय है. वर्तमान परिस्थितियों की विसंगतियों पर प्रहार करने में आप सफल रहे हैं. 'अन्ना की टोपी' कहानी ने विशेष प्रभावित किया. जब तक लोगों की मानसिकता में बदलाव नहीं आता, सभी क़ानून समय पा कर बेकार हो जाते हैं. इसलिए क़ानूनों से अधिक विचारों में बदलाव लाने की अधिक आवश्यकता है. अन्य कहानियां एवं लघुकथाएं भी प्रभावित करती हैं.

राजेंद्र निशेश

२६९८, सेक्टर ४०-सी, चंडीगढ़-१६००३६

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर २०१२ मिला. आभार. पिछले अंक की कहानियां 'रंगों का पटाक्षेप' व शिनाख़्त की तरह इस बार भी 'दुनिया में' गजेंद्र रावत तथा 'खारा पानी-मीठा पानी', डॉ. रमाकांत शर्मा की कहानियों ने काफ़ी प्रभावित किया. शिल्प के साथ कथ्य में भी दोनों कहानियां बहुत अच्छी हैं. कहानियों के अनुरूप कविता एवं ग़ज़लें सशक्त नहीं हैं. सविता जी का कॉलम हमेशा की तरह अच्छा है. कुल मिलाकर 'कथाबिंब' साहित्य पत्रिका नहीं, आदत में शामिल हो गयी है.

सलीम अख़्तर

वहीद मंजिल, अंसारी वार्ड, गोंदिया-४४१६०१

कहानी

पलायन....

✍ डॉ. विवेक द्विवेदी

वह उकड़ू बैठा नीले आसमान की ओर निहार रहा था. कभी आंखों के सामने आसमान छूती आग की लपटें कौंध जातीं. फिर कानों में अंगारे आ गिरते. 'स्साला जागीरदार बनने चला था.' फिर दूसरी आवाज़ों का दौर शुरू हो जाता. 'अब खेती करने का ख़्याल मन में नहीं लायेगा.... फायर बिग्रेड की गाड़ी का सायरन सुनायी देने लगा था. उसके चेहरे पर थोड़ी चमक उभर आयी थी. 'हे भगवान कुछ तो बचा दो....' धीरे-धीरे बुदबुदाता. अभी भी मां और बाबू जी के साथ पत्नी की कर्कश चीख़ कानों में गूंज रही थी. 'तेरा नाश हो...नहीं देखा गया हरामजादों से....इनकी ठठरी जरे.....शांत रहो देखो प्रभू को यही मंजूर था.'

वह तब भी निराश नहीं था. शहर जा कर कुछ न कुछ करेगा. छोड़ देगा गांव. ठीक किया सुरेश, पप्पू, लल्लू, रमेश और राघव ने. डूब जाने दो गांव को. रहें शराबी और गंजेड़ी. लूटें कब तक लूटेंगे? एक दिन दहार में कूद कर डूब मरेंगे. बहोरन की तरह. घर में पुलिस, वन में पुलिस, चप्पे-चप्पे में पुलिस. जान बचाने के लिए मरघटा में कूदा था. कूदते ही मगर आगे बढ़ा था. एक ही बार में मुंडी जबड़े में दबोच ली थी.

उसका बैग तैयार हो गया था. रास्ते के लिए पत्नी ने पूड़ी और सब्ज़ी बना दी थी. पिता ने चिट्ठी लिखी थी. चलते वक़्त मां ने दही और गुड़ खाने को दिया था. पिता ने चिट्ठी पकड़ाते हुए कहा था — ''मौसा को दे देना. फ़ैक्ट्री के मालिक से उनके अच्छे संबंध हैं.''

बाहर निकलने से पहले उसने पत्नी की सलाह पर अमल किया था - 'प्रवसि नगर कीजै सब काजा. हृदय राखि कौशल पुर राजा.' उसने इस चौपाई को तीन बार पढ़ा था. फिर पिता की बतायी बात याद आयी. जब भी किसी शुभ कार्य के लिए आगे बढ़ो अपना स्वर देखो. यदि बायां स्वर चल रहा है तो बायां पैर बाहर निकालो. यदि दायां तो....' उसने स्वर का भी पालन किया. घर से निकल पड़ा. मन बोझिल था. पांव वज़नी. बहुत कुछ खोने का गम. कुछ पाने की चिंता ने पैरों को गति दी. बस स्टॉप पांच मील दूर था. कुछ दूर पिता और मां ने साथ दिया. उसने दोनों को पांव छू कर वापस कर दिया. आगे की चिंता सताने लगी. पूरा गांव बंबई कमाने गया है. वह अकेला दिल्ली जा रहा है. रास्ते में दीना मिल गया. उसने अपनी साइकिल पर बैठा लिया. रास्ता पार हो गया. जाते ही बस मिल गयी. चलते-चलते दीना ने कहा — ''बीरन हमारे लिए भी काम देखना.''

उसके दिल में आया — नहीं दीना, गांव में खेती-बारी देखो. पूरा गांव खाली हो जायेगा तो इन नशेड़ियों को कौन रोकेगा हालांकि अभी जेल में हैं. लेकिन कल तो बाहर आयेंगे. फिर उसे लगा, नहीं-नहीं. बिना बाहरी कमाई के खेती अकेली क्या करेगी. उसने ही कहा — ''ठीक है दीना मैं जम जाऊं तो तुम्हें बुला लूंगा.''

बस चल दी थी. राजधानी जा रहा था. जहां देश के प्रधानमंत्री रहते हैं. उन्हें सारा हाल सुनायेगा. उसे यक़ीन था कि विधायक और मंत्री जी से भी उसकी मुलाकात हो जायेगी. यदि मंत्री जी न चाहते तो उतना भी मुआवज़ा न मिलता. तभी सभी को थोड़ा-थोड़ा दिया है. सरकार कुछ तो करती है.

उसे फिर याद आया. ठीक एक साल पहले इसी तरह उसने अपना बैग तैयार किया था. पत्नी ने कपड़े धोकर इस्त्री की थी. मां ने पूड़ी और सब्ज़ी बनायी थी. बैग में कुछ पैसे रख रहा था, तभी पिता जी की आवाज़ ओसारी से सुनायी दी थी.

''तुम कहती हो तो मान लेता हूं. लेकिन बाभन जाति की बलिहारी है. हल जोत नहीं सकती. बोझ ढो नहीं सकती. दो अक्षर पढ़े तो परदेस. तुम्हें पता है कि बंबई में ये लोग क्या करते हैं? कोई चना बेचता है तो कोई मूंगफली बेचता है. कुछ तो पूरी ज़िंदगी पल्लेदारी करते रहते हैं. देख लो पटना गांव के धीरज सिंह के बेटवा को....

२-४-१९५८

एम. ए., एल- एल. बी., पी. एच. डी.

लेखन - *कहानी, उपन्यास, आलोचना.*

प्रकाशन - *देश की महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में कहानियां और आलोचनायें प्रकाशित., 'अंतरीप' उपन्यास धारावाहिक के रूप में प्रकाशित.*

पुस्तकें - *भीष्म साहनी, उपन्यास साहित्य- आलोचना, 'शब्द शिल्पी', 'आदमी और जानवर', उपन्यास 'एक और सच', (कहानी संग्रह), 'कब समझेगा यह देश' (उपन्यास) प्रकाशनाधीन.*

संप्रति - *नौकरी.*

कमाई का भूत उतरा तो परदेस से लौटकर अब लोगों का खेत अधिया ले रहा है. किराये के ट्रैक्टर से जुताई कराता है. पिछले साल पांच सौ खांड़ी गेहूं पैदा किया. घर के काम से जी चुराते हैं ये लड़के. बंबई नरक है नरक. निचोड़ लेती है, फिर पेट भर रोटी देती है.''

बस झटके के साथ रुकी थी. उसका सोच का क्रम टूट गया था. कुछ लोग उतर-चढ़ रहे थे. बस थोड़ी देर में फिर घुर्र-घुर्र करने लगी थी. दो-तीन लोग जो नीम की छांव में खड़े थे, फटी-फटी आंखों से बस की ओर निहार रहे थे. एक छोटा नंगा लड़का बिना किसी आशय के चलती बस को जीभ दिखा रहा था. शायद उसी बस्ती का था. फिर बस्ती की ओर ही दौड़ लगा दी.

क्रम टूटा तो दिमाग़ में निर्वात जैसी स्थिति रही. बस के अंदर एक हलचल सी हुई. किसी ने हवा गंदी की थी. किसी ने ज़ोर से कहा — ''लगता है स्साले मूस खा कर आते हैं.'' चट-पट कांच की खिड़कियां खुलीं. उसके बगल में बैठी अधेड़ उम्र की औरत मुंह के ऊपर आंचल रखते हुए बुदबुदायी.

वह फिर अतीत के पन्ने उलटने लगा था. छन-छन कर फिर पिता जी की बातें याद आनी शुरू हो गयी थीं.

''तुम देख लेना साल भर बाद लौटेगा. सूख कर करइन हो जायेगा. पहचान नहीं पाओगी कि...''

अब उससे नहीं सुना गया था. बैग पटका और सीधे ओसारी में जा पहुंचा. उसका चेहरा लाल हो गया था. आंखें भी लाल हो गयी थीं. बाबू से सीधे संवाद किया — ''बाबू जी मैं खेती करना चाहता हूं. लेकिन खेती में भी ख़र्चा लगता है. आप लगायेंगे ख़र्चा.''

पहले तो पिता परेशान हो उठे. फिर लगा लोहा गरम है. जल्दी हथौड़ा चलाना चाहिए. पिता ने तत्काल कहा — ''मैं पूंजी भी लगाऊंगा और लोगों से ज़मीन भी अधिया में दिलवाऊंगा. इतना कमा लोगे कि दस नौकर रख सकोगे.''

''ठीक है मैं अब कहीं नहीं जाऊंगा.''

अंदर आया तो पत्नी ख़ुशी से रो पड़ी. दो साल का बच्चा पप्पू पापा की गोदी से लिपट पड़ा. उसे भी मन ही मन संतोष हुआ. दूसरों की गुलामी से अच्छा अपने घर की सेवा. फिर उसे धीरज सिंह के बेटे नीरज की याद आयी. पिछले साल दो सौ क्विंटल धान उगाया था. इस साल एक हज़ार बोरा गेहूं पैदा किया है. दो लाख का तो सिर्फ़ प्याज़ बेचा है. पूरे गांव की खेती अधिया लिया है. उसने बैग खाली कर दिया. डिब्बे में बंद पूड़ी सब्ज़ी बैठकर प्रेम से खायी. पप्पू को भी खिलायी. पत्नी को समझाते हुए बोला - ''मैं परदेस घूमने नहीं जा रहा था. कमाने जा रहा था. बाबू ने यहीं बंदोबस्त कर दिया तो.....पागलों की तरह रोती है.''

''तुम्हें का पता, कभहूं अकेले नहीं रहे न? इसीलिए.....''

''तुम मूरख हो. पति परदेस नहीं जायेगा तो खिलायेगा क्या?'' इतना बोल कर उसने पत्नी का गाल सहला दिया.

नीरज सिंह उसका दोस्त था. दोनों बचपन से एक साथ पढ़े हैं. पड़ोसी गांव के होने के नाते दोनों ने एक साथ बदन भी रगड़े हैं. नीरज सिंह काफ़ी उदार लड़का था. उसे

मानता भी था. जब उसे पता चला कि बीरन भी खेती करेगा तो उसने ख़ुशी जाहिर की. फिर बोला — ''तेरा आधा गांव तो फौजी है. औरतें खेती करने से रहीं. तू भी अधिया ले ले. मैं ट्रैक्टर किराये से दिलवा दूंगा. और सुन बीरन बंबई नरक है नरक. टट्टी करने के लिए भी लाइन लगानी पड़ती है. एक बार मेरे साथ वाले की चड्डी गीली हो गयी थी.''

फिर दोनों ख़ूब हंसे थे. नीरज ने कई क़िस्से सुनाये थे. उसने कहा — बंबई में मेरा दोस्त अक्सर कहा करता था — ''नीरज गांव वालों के एक ही घर होता है. यहां हम लोगों के तो कई घर होते हैं. कभी रेल्वे प्लेटफॉर्म, कभी फुटपाथ, कभी दुकान के छज्जे के नीचे तो कभी पार्क. हां रात में जब पुलिस वाले की पाली बदलती है तो हर पाली में हर पुलिस वाले को दस रुपये चुकाना पड़ता है. संडास जाने के लिए धैर्य की आवश्यकता पड़ती है.''

नीरज और बीरन के बीच एक लंबी बात हुई. उसने आधुनिक खेती करने के तरीक़े बताये. उसे नीरज से मिलना अच्छा लगा. बाबू ने बरसात से पहले अधिया की बीस एकड़ ज़मीन हासिल कर ली थी. ख़ुद के पास सात आठ एकड़ ज़मीन थी. शुरुआत में ज़्यादा ज़मीन लेने के पक्ष में बीरन नहीं था. बाज़ार जाकर अच्छी क़िस्म की धान ख़रीद लाया था. दौगरा गिरने से पहले उसने रोपा का बीज बो दिया था. नीरज ने उसे समझाया था. अधिया का मतलब आधा बीज, आधी खाद और बिजली का आधा ख़र्च ज़मीन का मालिक देगा. जोताई और मड़ाई के साथ मेहनत तुम्हारी. यदि यह मालिक नहीं देता तो अधिया की जगह तिहाई देना.

पिता शिक्षक थे. साथ में किसानी भी करते थे. लेकिन उसने कभी खेती नहीं की. फिर पिता के साथ उसका उत्साह दोगुना था. उसने पानी गिरते ही खेतों की प्लाऊ शुरू कर दी थी. नीरज ने उसे ट्रैक्टर किराये पर दिलवा दिया था. उसी ने सलाह दी थी कि यदि रोपा लगाने के लिए मज़दूर न मिलें तो बाज़ार दर पर उन्हें बुला लो. वैसे भी गांव में मज़दूरों का टोटा हो गया था. लेकिन बरसात में मज़दूर पक्षियों की तरह शाम को अपने घोसलों में लौट आते थे. घुटने तक पानी भरे कीचड़ में घुसे उसे देख कर पिता ने संतोष की सांस ली.

''बेटा यह ज़िम्मेदारी निभा लेगा.''

लेकिन पांव से सर तक कीचड़ में सना देख कर मां परेशान हो उठी.

''मज़दूर लगा दो वह तो...'' मां ने कहा था.

''बीरन की अम्मा उसे काम करने दो. यही मिट्टी उसे सोना बना देगी. वैष्णों माता के यहां जाते वक़्त कितने पगड़ीधारी सरदार खेतों में फावड़ा चलाते दिखे थे. चारा-भूसा बेच कर कार ख़रीदते हैं.''

मां का दिल थोड़ा ज़्यादा कोमल होता है. उससे नहीं देखा जाता कि उसका इकलौता बेटा पूरे दिन भीगता खेतों में खटे. बारह पत्थर पूज कर उसे यह रोशनी मिली थी. सदैव उसे आंचल में छिपा कर रखा. कभी धूप, गर्मी और बरसात उसे छू तक नहीं गयी. पिता ने शिक्षक होते हुए भी बेटे को पढ़ाया ज़रूर लेकिन बेटे को कमज़ोर नहीं बनाना चाहते थे. चाहते थे कि हर मौसम की मार उस पर पड़े. उन्हें भविष्य का पता था. मां की ममता उसे संघर्ष से बचाती है. मां ने बारहवीं के बाद बाहर नहीं पढ़ने जाने दिया. अक्सर कहा करती थी - ''भगवान ने एक आंख दी है. मैं उसे बचा कर रखूंगी. तुम्हारी पेंशन में उसका गुज़ारा चल जायेगा.'' पिता कई मामलों में कमज़ोर पड़ गये थे, रिटायरमेंट के दस साल बाद जब उन्हें लगा बेटे का भविष्य अंधकारमय है. तब थोड़ा सख़्त हुए, ''कब तक मैं जिऊंगा. कुछ करो. कल.....''

लेकिन वह सब समझता था. कई बार परदेस जाने की इच्छा हुई. मां ने रोक दिया. इस बार पिता ने रोक दिया. पिता को नाती का भविष्य दिखने लगा था. अब गांवों में पहले जैसी पढ़ाई स्कूल में नहीं होती थी. जितने संविदा शिक्षक थे, कभी स्कूल आते तो कभी नहीं भी आते. नाती को बाबा शहर में पढ़ाना चाहता था. मेड़ पर बैठा बीरन यही सोच रहा था. पानी कई वर्षों के बाद इतना तेज़ गिर रहा था. शायद पहली बार मेड़ पर इस तरह बैठा था. खेत में भरे पानी के ऊपर एक सांप दौड़ रहा था. उसे सांप का दौड़ना अच्छा लग रहा था. अचानक उसकी नज़र मेड़ के किनारे बैठे मेढ़क पर गयी. सांप बिना वक़्त गंवाये आया और उसे दबड़े में दबोच लिया. उसकी टांगें बाहर थीं. वह चीं-चीं कर रहा था. सांप पानी में डुबकी लगा गया था.

बूंदें बड़ी-बड़ी थीं. फिर मूसलाधार बारिश शुरू हो गयी थी. वहां बैठना उसे अच्छा नहीं लगा. उठा और धीरे-धीरे खेत में बनी कांस की झोपड़ी की ओर बढ़ चला. रास्ते

में रोपा का खेत दिखा. धान के पेड़ कुछ बड़े हो गये थे. अचानक उसका पैर फिसल गया. वह मेड़ के नीचे जा गिरा. छाता दूर गिरा. पूरी तरह से भीग गया था. चड्डी में कीचड़ थपोक गया था. पानी के साथ हवा का झोंका भी बहुत तेज़ था. छाता हवा के झोंके के साथ काफ़ी दूर जा पहुंचा था. बरसाती जूता एक पांव से निकल कर उसी जगह कीचड़ में धंस गया था.

□

बस अड्डे पर पहुंचकर खड़ी हो गयी थी. उसे पता ही नहीं था. बगल में बैठी महिला ने कहा — ''दादू, रीमा आ गया.''

उसे झटका सा लगा. सपना टूट गया था. फिर भी उसका मन उसी नीरस विषय पर जाकर टिक जाता. अतीत उसका पीछा नहीं छोड़ता था. वह उठा और बस से बाहर आकर उसने रिक्शा पकड़ा और सीधे रेल्वे स्टेशन जा पहुंचा. दिल्ली की ट्रेन छूटने में अभी दो घंटे शेष थे. प्लेटफॉर्म पर घूमना उसे अच्छा लग रहा था. चायवाले की आवाज़ उसे बार-बार अपनी ओर खींच रही थी. फिर मूंगफली वाला और समोसा वाला चिल्लाते हुए बगल से निकल जाते. अचानक पुरानी पत्रिकाओं और फ़िल्मी गानों की क़िताब लिये एक आदमी आकर उसके पास खड़ा हो गया.

''ए बाबू, यह बहुत अच्छी क़िताब आयी है. देवर-भौजाई की नोंक झोंक. ले लो. रास्ता पार हो जायेगा.''

''नहीं, नहीं, मैं यह सब नहीं पढ़ता.'' उसने अनमने भाव से कहा..

''कोई बात नहीं. इसे रख लो. इसमें अच्छे-अच्छे चित्र हैं. तुम्हें देखना चाहिए. 'अंगड़ाई' है. रास्ता पार हो जायेगा,''

''मुझे कुछ नहीं चाहिए. मेरा रास्ता पार हो जायेगा.''

''न लो अभी तो पूरा स्टेशन है.'' उसने ग़ुस्से से कहा. फिर बुदबुदाते हुए आगे बढ़ गया - ''आजकल के लोग 'अंगड़ाई' भी नहीं पढ़ते.''

तभी उसने चाय वाले को बुलाया — ''कितने की चाय है?''

''पूरी दुनिया में पांच रुपये की मिलती है. बोलो पीना है?'' उसने जैसे समझ लिया था कि यह छोरा देहाती है. वह देहाती तो था ही. पहली बार दिल्ली जा रहा था. इसके पहले गंगा स्नान करने इलाहाबाद गया था. फूफा के साथ जबलपुर गया था. मामा के पास एक बार लखनऊ गया था. फिर भी देहाती था. क्योंकि सिर्फ़ गया था. घूम फिर कर लौट आया था. इसीलिए शहर देखा था, लेकिन शहर के साथ जिया नहीं था.

''दे दो.'' उसने भी अनमने ढंग से कहा और जेब से एक-एक के पांच सिक्के निकाल कर आगे बढ़ाये. उसने एक हाथ से चाय आगे बढ़ायी और दूसरे हाथ से पैसे थाम लिये.

''वाह पहली बार किसी ने चिल्लर दिये.''

''क्यों कोई चिल्लर नहीं देता?'' उसने चाय की चुस्की लेते हुए पूछा.

''तुम चाय पियो, अभी....'' पता नहीं आगे क्या बोला और बुदबुदाते हुए आगे बढ़ गया.

उसने इत्मीनान से चाय पी. फिर जेब से तंबाकू की पुड़िया निकालते हुए एक चुटकी ली और नीचे वाली दाढ़ में दबा ली. तब तक ट्रेन स्टेशन पर आ कर खड़ी हो गयी थी. भीड़ बहुत नहीं थी. सीट आराम से मिल गयी थी. ऊपर की बर्थ खाली थी. उसने अपनी चादर बिछा ली और सिरहाने तरफ़ बैग रखकर नीचे खिड़की के पास बैठ गया. ट्रेन वहीं से बनती थी. जनरल डिब्बा भी खाली था. सामने वाली सीट पर दो नौजवान आये और बैठ गये. दोनों गांव के रहने वाले थे. एक ने पूछा — ''भैया कब चलेगी ट्रेन?''

''चार का टाइम है. कहां जाओगो?''

''दिल्ली.'' वह घड़ी देखते हुए बोला. फिर आगे बोला - ''तुम कहां जाओगे भैया?''

''वहीं. तुम लोग वहीं काम करते हो?'' उसने पूछा.

''यह ठेला लगाता है. मैं इसके साथ काम की तलाश में जा रहा हूं.''

तीनों के बीच ट्रेन छूटने के पहले अच्छा ख़ासा परिचय हो गया था. ट्रेन छूटते ही उसे पत्नी की याद आ गयी थी. घूंघट के पीछे छिपी आंखों से आंसू लुढ़क आये थे. चलते हुए बोली थी — ''पहुंचते ही चिट्ठी लिखना. हमारी याद न करना. मैं बाबू जी और अम्मा के साथ पप्पू का ख़्याल रखूंगी.''

उसने मन ही मन कहा था — ''याद तो आयेगी

सरोज. वह भी भला कभी रुकी है.''

सतना गुज़रा. मानिकपुर गुज़रा. डभौरा में कुछ लोग और चढ़े. डिब्बा आधा भर गया था. वह ऊपर की बर्थ में जा कर लेट गया था. शरीर में थकान चढ़ी थी. आखें ढप गयी थीं. लेकिन नींद नहीं आयी थी. अचानक फिर गांव की याद आने लगी थी. पहली बार धान की फ़सल दो सौ क्विंटल उसने अपने खलिहान में देखी थी. पूरा गांव उतनी फ़सल देखने को उमड़ आया था. फिर उसने गेहूं बोया था. नीरज सिंह ने उससे कहा था — ''प्याज़ की फसल अगले साल से बोना. इस साल पूंजी तैयार कर लो.'' बंटवारे के बाद उसे पचास क्विंटल चावल मिला था. उसने बाबू से कहा था — ''अगले बरस से तुम पप्पू को लेकर शहर चले जाओ. मैं और सरोज यहां रहेंगे. तुम और अम्मा पप्पू को वहीं पढ़ाओ.

पिता जी को तो इसी दिन का इंतज़ार था. खेतों में जाकर रात-रात भर पानी लगाता. दो बार पैर में बबूल के कांटे टूट चुके थे. लेकिन न ख़ुद रुकता और न मज़दूरों को बैठने देता. पिता खेत में ही खाना ले जाते. दोनों मज़दूरों के बीच उसने दूरी समाप्त कर दी थी. उन्हें साथ में बैठाकर खिलाता. मां और पत्नी की नींद रात में अचानक उचट जाती. दोनों को एक ही चिंता सताती. बीरन मज़दूरों के साथ खेत में जूझ रहा है. मां उठती और पिता के पास जाती. फिर धीरे से उठाती — ''अजी सुनते हो.''

''जग रहा हूं. अभी-अभी खेत से लौटा हूं. रात में बिजली देर से आयी थी.''

''बीरन को कल से बुखार है. जाओ और उसे भेज दो.''

''बीरन की मां वह नहीं आयेगा. घुटने तक कीचड़ में सना है. मुझे कह-कहकर भेज दिया.'' पिता ने ग़ुस्से से कहा.

''कैसे निर्दयी बाप हो तुम.'' मां ने फिर ग़ुस्से से कहा.

फिर पिता नहीं रुके. उठे और दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल गये. मां फिर चिल्लायी - ''बैटरी लेते जाओ और कंबल ओढ़ लो.''

उसकी आंखों में वे सारे दृश्य उभर आते. नींद कोसों दूर थी. करवट बदलता तो बर्थ की पटरियां पीठ में गड़ जातीं. कभी ऐसे बिस्तर पर नहीं लेटा था. इसलिए असुविधा महसूस कर रहा था. फिर अपने आप से कहता - ''बीरन लेटा रह. हो सकता है, सड़क पर भी सोना पड़े.'' उसे नीरज की बात याद आ गयी थी. उसने बताया था. मुंबई में फुटपाथ पर लेटना पड़ता है. रात में जब पुलिस वाले डंडा पटपटाते हैं तो उठकर भागना पड़ता है. जब दस रुपये पा जाते हैं, तब सोने देते हैं. लेकिन दिल्ली में ऐसा नहीं होता होगा. वहां तो देश के प्रधान मंत्री जी रहते हैं. कहते हैं दिल्ली की सड़कें गद्देदार हैं. यदि सड़कों पर लेटना पड़ा तो भी कोई बात नहीं. तभी तो बाबू जी ने दिल्ली जाने की

ग़ज़ल

✍ तारकेश्वर शर्मा

ग़ज़ल नहीं अब आग लिखूंगा,
बहरहाल इन्कलाब लिखूंगा.

थक गया रहम करते-करते,
सितमगरों पर आज लिखूंगा

ओ क़लम! सिर्फ़ चलती रहना,
गुनाहों पर क़िताब लिखूंगा.

कई बातों से ख़फ़ा हूं मैं,
दीनों का इतिहास लिखूंगा.

लिखूंगा कभी ग़ज़ल या हज़ल,
उठ ना! तीर-कमान लिखूंगा.

अंधेरों से डर लगता है,
शमा जला! अशआर लिखूंगा.

कब तक अश्क मैं पीता रहूं,
दर्दोगम का सार लिखूंगा.

किसे फिकर है लूट-खसोट की,
इनका भी हिसाब लिखूंगा.

घायल हूं सो कराहता हूं,
हर दर्द पर काव्य लिखूंगा.

न्यू ट्रैफिक रेलवे कॉलोनी,
क्वार्टर नंबर डब्ल्यू-३६, यूनिट-२,
पोस्ट-इंदा, खड़गपुर (प. बं.)-७२१३०५.
मो. - ९९३३६१५०७४

इज़ाज़त दी है.

सामने वाली बर्थ पर लेटे सोहन ने उसी समय पुकारा - ''भैया तुम्हारी चादर नीचे झूल रही है.''

वह उठा तो पाया कि पूरी चादर नीचे खिसक गयी है. उसे लगा कि इसीलिए पटरियां गड़ रही थीं. वह नीचे उतरा और फिर से पूरी चादर बिछायी. इस बार उसके ऊपर तौलिया भी बिछा दिया. बिस्तर थोड़ा मोटा हो गया था. सोहन को तका कर बाथरूम चला गया. भीड़ उस दिन डिब्बे में कम थी. तब भी लोग नीचे लेटे हुए थे. वह कूदता–फांदता गया और उसी रफ़्तार से लौट भी आया. ट्रेन पूरे वेग से चल रही थी. उसने खिड़की से बाहर झांका. शायद कोई गांव दिख रहा था. दूर-दूर तक बिजली के बल्ब टिमटिमा रहे थे. रात अंधेरी थी. लेकिन शायद इधर वर्षा हो गयी थी, इसीलिए हवा ठंडी चल रही थी. वह फिर ऊपर चढ़ गया था. तंबाकू की अमल लगी तो जेब से चुनहई निकाल कर तंबाकू मलने लगा.

''भैया थोड़ा हमें भी.....''

उसने ऊपर से ही दायां हाथ आगे बढ़ाया. दोनों फिर थोड़ी देर तक बतियाते रहे. दोनों पहली बार दिल्ली जा रहे थे. इसीलिए दिल्ली उनके लिए एक अजूबा शहर भी था.

''भैया दिल्ली में ट्रेन ज़मीन के नीचे चलती है. तुमको पता है?'' सोहन ने कहा.

''ज़मीन के नीचे कैसे चलेगी. पर चलो देखेंगे. राजधानी है. कहते हैं प्रधानमंत्री जी दिल्ली के लिए बहुत काम किये हैं.''

उसने देखा सब गहरी नींद में सो रहे हैं. ज़्यादा बात करना उचित नहीं है. नीचे उतरा और तंबाकू खिड़की से थूक कर फिर ऊपर चढ़ गया.

आंखें बोझिल थीं. नींद आ भी रही थी और नहीं भी. अचानक फिर गांव याद आ गया. तालाब की भीट के ऊपर खलिहान बना था. गेहूं की फ़सल के बोझ ट्रैक्टर से आ रहे थे. अलग-अलग खेतों की फ़सल अलग-अलग रखी जा रही थी. लोगों को अधिया भी देना था. उसने भूमि स्वामियों को बुला लिया था. खलिहान में उन्हें भी रहना पड़ेगा. ज़्यादातर औरतें थीं. उन्हें बीरन पर पूरा भरोसा था. बीरन ईमानदार था. पिछली फ़सल में ही लोग समझ गये थे.

बाबू जी तो स्थायी तौर पर आम के नीचे झोपड़ी बना कर बस गये थे. दो घड़ों में सुबह ही पानी भरवा देते. जिसे जितना पानी पीना हो पियो. गर्मी का समय था. अप्रैल-मई का महीना. लू तो वैसे भी तेज़ हो जाती. चारों तरफ़ गेहूं के बोझ ही बोझ. गांव के दो-चार बुजुर्ग अंदाज़ लगाते. पांच सौ क्विंटल से कम क्या होगा. वह तो खेत की कटाई में व्यस्त था. पचास मज़दूर लगे थे. काटते जाते और ट्रैक्टर में पहुंचाते जाते. बाबू जी ने दो-दो थ्रेसर मंगवा लिये थे. जैसे ही बिजली आ जाती. छोटे किसानों के खेत की गहाई भी शुरू हो जाती. भूसे के धुंध से पूरा तालाब भर गया था. पसीने से चिपचिपाते उसके बदन पर जब भूसा पड़ता तो खुजली शुरू हो जाती. लेकिन उसकी प्रसन्नता का कोई पारावार नहीं था.

एक दिन अचानक बिजली चली गयी. चांदनी रात थी. लेकिन उस रात देर तक बिजली नहीं आयी. चारों तरफ़ सन्नाटा फैला था. तालाब के दूसरे छोर पर भी कुछ किसान बिजली के इंतज़ार में बैठे थे. वह उस रात खलिहान में अकेले था. बाबू खाना खाकर शायद बिजली के इंतज़ार में घर पर ही सो गये थे. वह भी खटिया पर औंधा लेटा था. अचानक आवाज़ आयी.

''आग, आग.....''

वह हड़बडा कर उठा. पीछे लपटें उठ रही थीं. देखते-देखते कोहराम मच गया. उसी वक़्त पवन देव भी मेहरबान हो गये थे. लपटें बढ़ चली थीं. किसी ने फौजी आदमी सुखवंत को आवाज लगायी—

''सुखवंत थाने फ़ोन लगाओ. फायरब्रिगेड.....''

तब तक गांव के जन बच्चों सहित बाल्टी में पानी लेकर आग बुझाने आ गये थे. आग उसके खलिहान में लगी थी. यदि समय रहते आग पर काबू नहीं पाया गया तो तालाब के चारों तरफ़ फैल जायेगी. तालाब सूखा था लेकिन दो-दो हैंड पंप लगे थे. पानी जितना डाला जाता वह आग में घी का काम करता. आधा खलिहान तो आग की लपेट में आ गया था. सुखवंत ने थाने में फ़ोन कर दिया था. थानेवालों ने फायरब्रिगेड को फ़ोन कर दिया था. दो सिपाही मोटरसाइकिल से आ भी गये थे. लेकिन हवा के साथ आग के गोले उड़-उड़कर चारों तरफ़ जा रहे थे. पुरवाई हवा ने पूरब की भीट पर रखे खलिहान को भी अपने लपेट में ले लिया था.

कोई कुछ चिल्ला रहा था तो कोई कुछ. आग की सांय-सांय में लोगों की चीख़ दब जाती. कभी गांव के

बच्चे होलिका दहन में ऐसी लपटों को देखकर कबीर बोला करते.

फायर ब्रिगेड की एक गाड़ी तो तत्काल चल दी थी. दूसरी गाड़ी कहीं आग बुझाने ही गयी थी. जब तक गाड़ी गांव पहुंची, आग ने उसका काम तो तमाम कर दिया था. उसके बाबू तो बेहोश हो गये थे. फायर बिग्रेड उधर आग में पानी की फुहार मार रहा था. इधर उसके बाबू जी को होश में लाने के लिए पानी के छींटे मारे जा रहे थे. वह समझ गया था कि यह सब किसने किया है. एक माह पूर्व कुछ लड़के आम के पेड़ के नीचे बैठे गांजा पी रहे थे. उसके एक मज़दूर रंगेज ने उनकी बातें सुनकर उसे बताया था.

''बीरन भैया, काका, रामू, दमडू और कोली आपके ख़िलाफ़ कुछ आग लगाने की बात कर रहे थे.''

''रंगेज, किसी को मेरी प्रगति नहीं सुहाती. लोगों को भड़का रहे हैं कि अगले साल से अपना खेत न दें. तू फिकर मत कर. मुझे ज़मीन की कमी नहीं है.''

बात आयी गयी हो गयी थी. उसे कल्पना भी नहीं थी कि ये लोग सचमुच खलिहान में आग लगा देंगे. रंगेज ने पूरा साथ दिया था. चारों जेल में हैं. लेकिन उससे क्या होता है. जेल तो वो लोग जाते रहते हैं. कल छूट जायेंगे. मेरा तो सब कुछ चला गया.

ट्रेन फुल स्पीड में थी. अचानक सोचते-सोचते सो गया था. उसे होश ही नहीं रह गया था. गहरी नींद में सो गया था. ट्रेन सुबह दिल्ली पहाड़गंज स्टेशन पर पहुंच गयी थी. सारे यात्री नीचे उतर गये थे. उसे किसी ने जगाया.

''उठो जी. दिल्ली आ गयी.''

वह हड़बड़ाते हुए उठा. लेकिन सिरहाने के ऊपर रखा बैग गायब था. उसने सामने देखा. दोनों साथी वहां नहीं थे. उसने जेब टटोलीं. ऊपरवाली जेब भी खाली थी. फिर उसने अंदर टटोला. अंदरवाले में फूफा का पता और कुछ पैसे बचे थे. वह ज़ोरों से चिल्लाने लगा —

''किसी ने मेरी जेब काटकर बैग पार कर दिया.''

यही चिल्लाता नीचे उतर कर इधर-उधर दौड़ने लगा. दोनों लड़के कहीं नहीं दिख रहे थे. किसी ने उसके रोने और चिल्लाने का कारण नहीं पूछा. दिल्ली दौड़ रही थी. वही थककर एक जगह बैठ गया. अचानक एक

पुलिसवाला आया और बोला - ''क्यों बे, क्यों रो रहा है?''

''साहब जी, मेरा बैग चोरी हो गया. किसी ने मेरी जेब काट ली....''

''स्साला जानता नहीं, यह दिल्ली है. यहां बड़े-बड़ों की जेब कट जाती है. लेकिन कोई तेरी तरह रोता नहीं.'' उसने डांटते हुए कहा. फिर उसी ने आगे कहा — ''यह दिल्ली है. यहां रोना मना है. यदि किसी चैनल वाले देख लिया तो तेरा रोना 'ब्रेकिंग न्यूज़' बन जायेगा और हमारी फ़जीहत हो जायेगी. इसलिए फूट यहां से.''

उसने जल्दी से अपनी आंखें पोंछी. फिर बोला — ''साहब जी, प्रधान मंत्री जी यहीं पर रहते हैं न?''

''तो....तेरा क्या मतलब. प्रधान मंत्री जी तेरा बैग ढूंढ़ने आयेंगे. स्साले यहां से भागता है कि.....''

वह पुलिस वाले को मुलुर-मुलुर देखने लगा था. जैसे कहना चाह रहा हो. पूरे देश का भार तो उन्हीं के ऊपर है साहब जी. लेकिन कहा नहीं. क्योंकि पुलिसवाले ने डंडा उठा लिया था. वह उठा और धीरे-धीरे आगे बढ़ गया.

राजीव मार्ग, निराला नगर,
रीवा (म.प्र.).
मो.९४२४७७०२६६

कविता

बुधिया

✍ राजेंद्र निशेश

बुधिया के लिए नहीं है कहीं बसंत
न कोई उत्सव
सर्दी-गर्मी भी कोई मायने नहीं रखती उसके लिए
उसने नहीं देखी कभी गणतंत्र-दिवस की परेड
न ही उसने कोई आज़ादी का सुख भोगा है,
रूठे बचपन से ही
वह लड़ रहा है अपने अस्तित्व की लड़ाई,
मां थी उसके बाप की भद्दी गालियों
और लातों-घूसों से मज़बूर
बाप था दारू का गुलाम/निठल्ला
नदी के दो किनारों की तरह
एक होकर भी दोनों हो न सके एक
और जल्दी ही चल बसे इस दुनिया से अतृप्त
छोड़ गये बुधिया के मासूम बचपन पर
दो छोटे भाई-बहनों का भार.

वह सुबह उठता है
और निकल पड़ता है बीनने कचरे के ढेरों से
वह सब कुछ
जिसे बेचकर वह कर सके कुछ जुगाड़,
उसे नहीं है ख़बर
कि सरकार ने दे दिया है उसे
पढ़ने-लिखने के अधिकार जैसा कुछ,
हां, अब वह भी
अपने बाप के नक्शे-क़दम पर चलने लगा है,
सस्ता-सा जो भी मिले
नशा करने लगा है,
मिट्टी के खाली पात्र की तरह है
उसकी यह ज़िंदगी
और समय का क्रूर-चक्र
नहीं देता उसे नीर का उपहार.

✆ २६९८, सेक्टर ४०सी, चंड़ीगढ़-१६००३६

लघुकथा

सौदा

✍ शुभदा पांडेय

सौ मीटर जाते ही रिक्शे के सामने एक मोटर साइकिल खड़ी हुई. ग़ौर से देखा – "अरे! अर्जुन तुम? क्यों परेशान हुए? मैं तो आ ही रही थी."

"तो क्या हुआ?" चाचा जी ने कहा – जाओ लिवा लाओ, गर्मी बहुत है. खुचर खूं से कब तक पहुंचेगी?"

सौरभी रिक्शे से उतरी और उसे पच्चीस रुपये देने लगी. अर्जुन तमतमा उठा – "अरे! यहीं तो कॉलोनी है, पच्चीस रुपये काहे के? ज़्यादा दादागिरी दिखाये तो हम भी नेतागिरी पर आ जायेंगे."

"अरे भई! इतना गर्म होने की क्या बात है? वह तो कुछ बोला नहीं. मैंने दरवाज़े तक पच्चीस रुपये में सौदा तय किया था. उसने उतारा तो नहीं. तुम मुझे लेने आ गये. अलग बात है. पर आदमी को अपनी जुबान नहीं खाली करनी चाहिए. इस पर इसका हक़ है."

सौरभी चलने लगी. रिक्शेवाले ने हैंडिल पर रुपया छुलाकर माथे से लगा लिया और मैडम की ओर कृतज्ञता के भाव से ताकता रहा.

✆ असम विश्वविद्यालय, शिलचर, असम-७८८०११.

कहानी

तो यह बात है !

✍ मणिका मोहिनी

अभी सुबह हुई नहीं थी या पूरी तरह नहीं हुई थी कि सामने वाले घर से चीखा-चिल्ली की आवाज़ें आनी शुरू हो गयीं. इनकी रात चीख़-पुकार से ख़त्म होती है और सुबह चीख़-पुकार से शुरू होती है. बड़े नियम के पाबंद हैं ये. ये पति-पत्नी हैं या....कहावत है न वह कुत्ते-बिल्ली का बैर है इनका. मज़ा आता है इन्हें, सच कहें तो लड़ने में. लड़ाई में भी एक रस होता है. आदत पड़ जाती है इस रसास्वादन की. न लड़ो तो लगता है. कुछ कमी है जीवन में. तो आओ चलो. पूरी करें. चुन-चुन कर ऐसे शब्द लायें जिन्हें सुन कर सामने वाला तिलमिला उठे. एक ही मक़सद है, सामने वाले को बेइज़्ज़त किया जाये, नीचे गिराया जाये, पर जिन शब्दों की मदद से उसे नीचे गिरायेंगे, वे शब्द बोलने वाले को भी तो नीचे गिरायेंगे? नहीं, बोलने वाले को इसकी चिंता नहीं. बोलने वाला तीसमारखां है. पर यहां तो दोनों ही तीसमारखां हैं. क्योंकि दोनों ही बोलने वाले हैं. जो चुप हुआ, वह समझता है, उसकी हार हो गयी. एक से बढ़ कर एक. हारेंगे क्यों? लड़ाई में कोई तमगा हासिल करना है क्या? किससे! जो सुन रहे हैं, यानी आस-पड़ोसी, वो तो कोई तमगा देने वाले हैं नहीं. सारे दुखी हैं. सबकी नींद ख़राब होती है. सबको लगता है कि ये लोग इस शानदार कॉलोनी में रहने के क़ाबिल नहीं. यह पढ़े-लिखे सभ्य लोगों की कॉलोनी है. सबका माहौल गंदा होता है. सबके बच्चों पर बुरा असर पड़ता है. पर कोई इस समस्या से निबटे कैसे? असल में समस्या जिन दो की है, उन्हें ख़ुद इससे निबटना नहीं आता. अपनी समस्या को दूसरों की समस्या बनाये हुए हैं. वैसे देखा जाये तो लड़ाई का कारण तो कोई नज़र नहीं आता. सब कुछ है घर में. अच्छे-ख़ासे संपन्न लोग हैं. पैसे की कोई कमी नहीं. बुद्धि की कमी ज़रूर लगती है. अब पैसे से तो बुद्धि ख़रीदी नहीं जा सकती. यूं नाम का पट्टा टांगा हुआ है घर के दरवाज़े पर जिस पर लिखा है — एस. एल. शर्मा, एल. एल. बी. उसके नीचे एक और नाम है — एम. शर्मा, एम. एस-सी. एस. एल. शर्मा यानी पति और एम. शर्मा यानी पत्नी. यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि नाम के पट्टे पर नामों के आगे डिग्रियां लिखवाने की क्या ज़रूरत थी? ताकि लड़ने से किसी को यह न लगे कि अनपढ़-गंवार हैं? पता था कि लड़ेंगे इसलिए यह प्रबंध करना ही था? भई ख़ूब, बहुत ख़ूब!

एम. शर्मा चाहे एम. एस-सी है पर करती-धरती कुछ नहीं. ग़लत, यह मैंने क्या, कैसे और क्यों कह दिया? सारा घर वही संभालती है. नौकर हैं पर नौकरों से भी काम करवाना होता है. बाहर जा कर काम करने को ही तो काम करना नहीं कहते. घर के काम की भी पूरी महत्ता है. और हां, दिन भर कॉलोनी में घूमती हैं, पति के काम पर चले जाने के बाद. आस-पड़ोस में बातें करने का शौक़ है उसे. किसी की भी कॉल बेल बजा कर अंदर घुस जाती है. छोटे शहर या छोटे मोहल्ले से यहां शिफ़्ट हुए लगते हैं ये लोग. वरना कॉलोनी में मजाल है कि दूसरा कोई इन जैसा हो. महीनों सूरत नहीं नज़र आती लोगों की. बस कोठी का गेट खोला, कार में बैठे और छूमंतर. न किसी से हेलो, न हाय. लंबी बातचीत का तो मतलब ही कोई नहीं. फ़ुर्सत किसे है? वैसे भी गली-मोहल्लों के ज़माने अब ख़त्म हुए. काकी-चाची कहने के दिन अब बीत गये. बस घर के भीतर दरवाज़े बंद करके बैठो. टी. वी. देखो या कंप्यूटर करो. या क़िताबें पढ़ो. क़िताबें आजकल कौन पढ़ता है? क़िताबों की परंपरा धीरे-धीरे समाप्त हो रही है. नहीं तो दिन भर सोते रहो. घर बैठ कर जो मर्ज़ी करो, बाहर निकलना, निकल कर अड़ोस-पड़ोस में झांकना असभ्यता की निशानी है. सामाजिकता चाहिए. दुनियादारी चाहिए तो अपने चुनिंदा लोग हैं न मिलने के लिए, अपनी पसंद के लोग, अपने मित्र, अपने संबंधी, जिन्हें समय-समय पर आमंत्रित करके पार्टियां करो या उनकी पार्टी में जाओ, लेकिन अनामंत्रित नहीं. अपनी पसंद के चुनिंदा लोगों से भी मिलने के लिए बिना बताये

१२-१३ वर्षों के अंतराल के बाद पुनर्लेखन.
कहानी-कविता की लगभग १५ पुस्तकें प्रकाशित.

उनके घर धावा बोलना आजकल का रिवाज़ नहीं है. न ही, सभ्यता की निशानी. बाहर जाना ही है तो फ़िल्म देखने जाओ, होटल में खाना खाने जाओ, मॉल में घूमने या ख़रीदारी करने जाओ. कहीं भी जाओ पर पड़ोस में मत जाओ. पड़ोसी को हमने चुना नहीं है, वह हमारी पसंद का नहीं हो सकता. ये सब बातें कॉलोनी के दूसरे लोग जानते और मानते हैं पर एम. शर्मा नहीं मानती. वह इतने पचड़ों में नहीं पड़ती. उसका अपना मन ही सब कुछ है. उसका मन किसी से बोलने का है तो बोलेगी ही. बेल बजने पर लोग दरवाज़ा खोल देते हैं, अंदर आने देते हैं. सभ्यता का तकाज़ा है. यही कारण है कि सारी कॉलोनी की ख़बर एम. शर्मा को है और उसकी ख़बर सारी कॉलोनी को. आम ख़बर तो आम ख़बर, उसकी तो ख़ास ख़बरें भी किसी से छुपी नहीं हैं. वह ख़ुद बता देती है. इसमें शर्म की क्या बात? क्या लोग सुनते नहीं हैं जब उनके घर में धूम-धड़ाका होता है बोल-बमबारी का. एस.एल.शर्मा, एल.एल.बी. और एम.शर्मा, एम.एस-सी. दोनों अपनी आवाज़ की बुलंदी पर होते हैं. शब्दों की रफ़्तार इतनी तेज़ कि सुनने वाले को एकाएक तो समझ ही नहीं आता कि बोल क्या रहे हैं. बस, लड़ रहे हैं, यही समझ में आता है. इतना ही काफ़ी है आस-पड़ोस के दुखी होने के लिए. कोई उनके लड़ने से दुखी क्यों होने लगा. लड़ाई की आवाज़ किसी तक न पहुंचे तो कोई दुखी नहीं, फिर वे चाहे लड़ें-मरें, डूबे-तरें, कुछ भी करें.

तो एक दिन एम. शर्मा ने मेरे घर की कॉल बेल बजायी. घंटी की आवाज़ सुनना ही मेरे लिए अनपेक्षित था. मैंने दरवाज़े की जाली से झांक कर देखा. अरे रे रे, यह तो वही है, इसे ज़्यादा मुंह नहीं लगाना. फालतू की बातों में मुझे कोई रुचि नहीं. मैंने अनसुना किया. कुछ पल के इंतज़ार के बाद उसने फिर घंटी बजायी. साथ ही आवाज़ भी लगायी. आंटी.... आंटी.... कैसे न खोलती? मुझे दरवाज़ा खोलना ही पड़ा.

''आइए मिसेज़ शर्मा,'' मैंने मुस्कुरा कर उसका स्वागत किया. यूं तो वे पहले भी कई बार मेरा हालचाल पूछने के बहाने आ चुकी थी.

''मैंने डिस्टर्ब तो नहीं किया?''

''नहीं....नहीं...'' मैंने झूठ बोला.

''मैंने सोचा, आंटी से मिले बड़े दिन हो गये. आप ठीक तो हो? कोई परेशानी हो तो मुझे बुला लिया करो.'' बोलती वह बहुत मीठा है. सिर्फ़ दूसरों से. अपने घर में नहीं.

''मैं ठीक हूं, मिसेज़ शर्मा....''

''आप मुझे मेरे नाम से बुलाया करो, मधु. मैंने कितनी बार कहा है आपसे. आपकी बेटी की तरह हूं मैं.''

अब यह और दिक्कत है यहां. बात करो सो करो, रिश्तेदारी भी बनाओ. इस मामले में मैं एकदम ख़ालिस सभ्य. मैं रिश्तों के संबोधन से न किसी को बुलाती, न किसी के द्वारा अपने को बुलाया जाना पसंद करती. रिश्ते होते हैं छोटे शहरों में, पुराने मोहल्लों में, जहां एक दूसरे के घरों में बाक़ायदा दख़लंदाजी की जाती है. मुझे गुरूर है कि मैं एक महानगर में रहती हूं, महानगर में भी पॉश इलाके में. जो भी हो, मिसेज़ शर्मा से तो मुझे हंस के ही निबटना था. मैंने कहा, ''हां मधु, बताओ, कैसी हो?''

''अब कैसी हो सकती हूं आंटी, ऐसे आदमी के साथ?''

''बोलने में तो तुम भी कम नहीं हो. आवाज़ तुम्हारी

भी ज़ोरदार है. क्यों बहस पर बहस किये जाती हो? तुम्हारा पति वकील है. उससे जीत पाओगी तुम?''

''बहुत कोशिश करती हूं. न बोलू, न बोलूं, पर कब तक? आख़िर बोलना ही पड़ता है. आप ही बताओ, मैं क्या करूं?''

''देखो मधु, हर समस्या का आपस में बात करके हल निकाला जाता है. तुम अपने पति से आराम से बात करो. कहो, कोई तो निष्कर्ष निकालना पड़ेगा. आख़िर सारी उम्र तुम लोग लड़ते कैसे रह सकते हो?''

''मैंने कई बार बात की है पर यह सुनना ही नहीं चाहते.''

''तुम ही उनकी बात मान लो. जो वो कहते हैं, वैसे कर लिया करो.''

''अरे यह तो हर बात में नुक्ताचीनी करते हैं. कोई कब तक चुप रहे?''

''तुमने इतनी पढ़ाई की है. कहीं नौकरी कर लो. जितनी देर बाहर रहोगी इस किच-किच से तो छूटी रहोगी.''

''लो कर लो गल्ल. आंटी, तुसी बी कमाल करदे ओ. साड्डे कोल इन्ना पैसा ऐ, मैनूं की लोड ऐ बाहर जाकर कम्म करन दी?''

''तुम्हारा अकेले दिल भी नहीं लगता न?''

''मैं अकेली कहां हूं? आप सब हो न मेरे साथ. सच आंटी, मैं रात-दिन के झगड़े के कारण बहुत परेशान रहती हूं. इस झगड़े से मुक्ति पाने का कोई उपाय बताओ.'

''तुम ऐसा करो,'' मैंने मुंहफट हो कर बोल दिया. ''तुम शर्मा जी से तलाक ले लो.''

''हैं.....'' वह चौंक पड़ी, ''आंटी, हम इज़्ज़तदार लोग हैं, हमारी मानसिकता बड़े शहरों की जैसी नहीं है. यह तो हो ही नहीं सकता. इस मामले में हम बहुत दकियानूसी हैं.''

मैं क्या उत्तर देती. चुप रही. मुझे वास्तव में ऐसा नहीं कहना चाहिए था. यह कोई समाधान तो नहीं कि जहां पति-पत्नी के बीच में लड़ाई हो, वहां तलाक ले लो...पर इन लोगों की लड़ाई कोई ऐसी-वैसी लड़ाई नहीं. सारी कॉलोनी सुनती है, फिर रोज़ का मामला है, कभी-कभी का नहीं, निर्लज्जता की हद तक पहुंचा हुआ.

मैंने कहा, ''अन्य कोई हल भी तो नहीं है....तो

बस. यूं ही मज़े लो, तुम लोग लड़ कर, हम लोग सुन कर.''

''क्या आंटी, आप भी बस....आपको मज़े सूझ रहे हैं और मेरी जान पर बन आती है.''

''मधु, कभी अंतरंग क्षण में मनाओ उन्हें....''

''न, न, मैं तो उन्हें हाथ भी नहीं लगाने देती, घिन हो गयी है मुझे उनसे.''

अब करने के लिए कोई बात नहीं थी. उसकी भड़ास निकल चुकी थी. वह चली गयी. मेरे लिए सिरदर्द छोड़ कर.

अब कोई सोचे, यह अलग-थलग रहने की सभ्यता-संस्कृति अच्छी है या आस-पड़ोस में बिना बुलाये घुस कर दख़लंदाजी करने और करवाने की? न ख़ुद चैन से रहो, न दूसरों को रहने दो. ख़ुद तो अपनी मूर्खता में जी ही रहे हो दूसरों को भी शामिल कर लो दुखी करने के लिए. अरे भई, दूसरे लोग ख़ाली नहीं बैठे, सब अपने-अपने कामों में लगे हुए हैं. कहां किसी के पास फ़ुर्सत है दूसरों के पचड़ों में पड़ने की. पहले का ज़माना अब नहीं रहा, जब पूरा मोहल्ला एक घर-परिवार की तरह रहता था. क्योंकि तब हरेक के पास इतने काम नहीं हुआ करते थे. कल से आज की कोई तुलना की ही नहीं जा सकती. ज़माना बदल गया है. समझो इस बदलाव को. मेरी प्यारी पुत्री-समान मधु. तुम क्या आयी, मेरे मूड का बेड़ा गर्क हो गया.

मैं अपने घर के आंगन में खड़ी पौधों को पानी दे रही

थी. मुझे एक ड्राइवर की तलाश थी. कई रख कर देखे पर कोई जमा नहीं. ड्राइवर रखना तो सच कोई मजबूरी हो, तभी कोई रखे. लगता है, एक टुच्चे से कमरे में घटिया ख़ुशबू का तेल बालों में लगाये एक अवांछित तत्व आपके साथ बैठा है. मैं स्वयं इतनी अच्छी ड्राइवर हूं पर मजबूरी, बिजनेस के कारण कभी ड्राइवर को इधर-उधर सामान के साथ अकेले भेजना पड़ता है. इसीलिए ढूंढ़ रही थी एक ड्राइवर, जिसके हाथों में कार बेफ़िक्र होकर छोड़ी जा सके.

अचानक मेरी निगाह सामने गयी, मधु का ड्राइवर उनकी गाड़ी साफ़ कर रहा था. मैंने उसे बुलाया. क्या बात है, बड़ी ख़ुशबुएं मार रहा है यह तो. इतना परफ़्यूम लगा कर आता है. मैं अपने ड्राइवर को कभी इस बात की इज़ाज़त नहीं दूंगी. मैंने उससे कोई ड्राइवर बताने के लिए कहा. उसने पूछा, ''कितनी तनख़्वाह दे देंगी? एक है अनुभवी ड्राइवर, पर सैलरी ज़्यादा लेगा.''

''कितनी ज़्यादा?'' मैंने कहा, ''गाड़ी ठीक चलानी आती हो. जो भी तर्कसंगत होगा. दे दूंगी.''

वह सोचने लगा. मैंने उससे उसकी तनख़्वाह के बारे में पूछा, ''तुम्हें कितनी मिलती है. बताना चाहो तो....''

''मेरी तनख़्वाह बहुत अच्छी है. साहब ने जो तय किया. वह तो देते ही हैं, मेम साहब भी ख़ुश हो कर कभी हज़ार, कभी दो हज़ार दे देती हैं.''

तो यह बात है. मधु, यू आर ग्रेट!

ए ६२, सेक्टर ४१,
नोएडा-२०१३०१
mohinimanika@gmail.com
Blog: vaicharikisankalan.blogspot.com

लघुकथा

कल्पना राम राज्य की

आनंद बिल्थरे

'जागते रहो' साप्ताहिक के संपादक प. हीरानंद शास्त्री, अपने दूर के लेखक, पत्रकार मित्र के साथ, चर्चा कर रहे थे. उसी वक़्त स्थानीय पत्रकार महेशजी, ग़ुस्से से तमतमाते हुए आये और बोले - ''इतना बड़ा स्कैंडल और आप लोग कुछ नहीं कर रहे हैं.''

- कर कैसे नहीं रहे हैं. न्यूज़ बराबर फ़्लैश हो रही है.

- किंतु बड़े, कमज़ोर कवरेज़ में.

- नहीं, महेश जी, कवरेज़ ठीक है. इस पर एक्शन भी होगा.

मेरी एस. पी. से बात हो गयी है. आप थोड़ा धीरज रखें.

महेश जी, असंतुष्ट से भुनभुनाते हुए चले गये.

- यार शास्त्री, तुम्हारे यहां की पत्रकारिता लगता है सचमुच प्रजातंत्र के, चौथे स्तंभ की भूमिका अदा कर रही है. देखो न, तुम किस तरह बड़े से बड़े के विरुद्ध आसानी से, लिख मारते हो, और तुम्हारा बाल भी बाका नहीं होता.

- और तुम्हारे यहां?

- हमारे यहां तो, क़लमवाले हाथों में जंजीर है. कहीं, लोहे की, कहीं सोने की. हमारे पत्र, संपादक, पत्रकार, सब किसी न किसी गुट या बाहुबली से संबद्ध हैं और उन सबके बीच यह अलिखित समझौता है कि हमाम में खड़े होकर कोई एक दूसरे को नंगा नहीं कहेगा. जो कोई भी इस समझौते की खिलाफ़त करता है, पागल कुत्ते की तरह घेरकर मार दिया जाता है.

लोग, ग़लत नेताओं की शह पर, ग़लत तरीके से पैसा बटोरते हैं, और ख़ुद ग़लत नेता बनकर चाहते हैं कि कोई उनके ग़लत कामों पर अंगुली न उठाये. ..... और हम हैं कि इसी खोखली नींव पर रामराज्य की कल्पना में ख़ुश हो रहे हैं.

प्रेमनगर, बालाघाट-481001.

कहानी

रिश्तों की भुरभुरी ज़मीन

✍ मधु अरोड़ा

रिंकी यह सोच-सोचकर परेशान है कि ज़िंदगी की सारी तोहमतें, सारे दोषारोपण उसके ही हिस्से में क्यों आते हैं. वह सबको ख़ुश करने के चक्कर में ख़ुद को इतना दुखी कर लेती है कि उसे अपना जीना बेकार लगने लगता है. रिंकी के साथ ही ऐसा क्यों होता है, जिसे वह अपना बनाती है या मानती है, वही उससे दूर हो जाता है. चाहे पति हो या दोस्त. इन लोगों से जब तब कहा-सुनी होती रहती है. जब तक सब कुछ चुपचाप सुन लेती है, वह सबसे अच्छी स्थिति होती है. यदा-कदा प्रतिक्रिया देती है तो हाथ तो कुछ नहीं लगता पर लोग उससे नाराज़ होकर किनारा करने की कोशिश ज़रूर करने लगते हैं. पति गिरीश किनारा तो नहीं करते पर रिंकी की बात को तरज़ीह नहीं देते.

वे हमेशा यह जताते हैं कि वे रिंकी को बहुत प्यार करते हैं लेकिन रिंकी को पता है कि यह प्यार तभी तक उंडेला जाता है जब तक कि उनकी बात मानती रहे. झूठ तो इतनी सफ़ाई से बोलते हैं कि सामनेवाला सहज ही विश्वास कर ले.

वह गिरीश के लिए क्या नहीं करती? उन्हें रिंकी से झूठ बोलने की ज़रूरत ही क्यों पड़ती है? रिंकी आधुनिक विचारों की है. गिरीश की सही बात मानती भी है. हां, उसे झूठ बोलने से सख़्त नफ़रत है. वह मानती है कि एक झूठ सौ झूठ बुलवाता है.

एक सच, इंसान को कई मुसीबतों से बचा लेता है, पर गिरीश को पता नहीं रिंकी से झूठ बोलने में कौन सा आत्मिक संतोष मिलता है. इस बात को लेकर घर में कई बार बहस, कहा-सुनी हो चुकी है पर परिणाम? वही ढाक के तीन पात. रिंकी को याद आता है कि वह अपने मायके में कितना धीरे बोलती थी. जिसको बात करना होता था वह पास आकर बात करता था. चिल्लाने की नौबत ही नहीं आती थी. सब ज़रूरत भर की ही बात करते थे. अपने कामों में मशगूल रहते थे. यहां ससुराल में कोई धीरे बात ही नहीं करता. पास में भी खड़े होंगे तो पेट से आवाज़ निकालकर इतनी ज़ोर से बोलेंगे कि बस, पूछो मत. रिंकी ने कई बार गिरीश से कहा भी है कि जो जितना झूठ बोलता है, वह उतनी ही ज़ोर से बोलता है.

संगत का असर तो होता ही है. अब रिंकी भी ज़ोर से बोलने लगी है लेकिन उसका ज़ोर से बोलना अपनी सही बात को मनवाने के लिए होता है और इस चक्कर में उसकी आवाज़ फट गयी है. गिरीश और रिंकी में किच-किच तो रोज़ ही होती है. मामला चाय का हो या खाने का.

अब उसी दिन की तो बात है. गिरीश चाय बनाने जा रहे थे. किचन से आवाज़ दी, ''रिंकी, चाय पियोगी?'' रिंकी ने कहा, ''आप चाय बना ही रहे हैं तो थोड़ी सी और बना लीजिए.'' गिरीश चाय बनाकर लाये.

बालकनी में कुर्सियां सरकायीं और तिपाई पर चाय रख दी. रिंकी ने जैसे ही चाय का एक घूंट भरा, उसे लगा कि मानो उसके होंठ चाय की मिठास से आपस में चिपक गये हैं. वह कह उठी, ''गिरीश, आपको पता तो है कि मैं चाय में चीनी नहीं लेती. लेती भी हूं तो बहुत कम.''

गिरीश रिंकी के मुंह से तारीफ़ सुनना चाह रहे थे. जब चाय में अधिक मीठे की शिकायत सुनी तो झुंझला गये. बोले, ''अब तुम्हें कोई डायबिटीज़ तो है नहीं कि शुगर लेवल बढ़ जायेगा.'' रिंकी ने कहा, ''मुझसे मीठी चाय पी ही नहीं जाती. अजीब सा लगता है. ऐसा लगता है कि मानो उल्टी हो जायेगी.''

गिरीश फुसफुसाती आवाज़ में बोले, ''अंग्रेज़ बनती हैं मैडम. ज़रा शक्कर ज़्यादा हुई नहीं कि मुंह बनाने लगती हैं.'' रिंकी ने गिरीश के लिप मूवमेंट से अंदाज़ा लगा लिया कि कम से कम रिंकी की तारीफ़ तो नहीं की जा रही. वह कुछ नहीं बोली.

अपना कप लेकर चुपचाप उठी और किचन में जाकर चाय सिंक में बहा दी और फिर से चाय का बर्तन चढ़ा दिया. रिंकी को चाय में अदरख, इलायची और सौंफ अच्छी

४ जनवरी, १९५८ को भारत में;
एम. ए.

कार्यक्षेत्र : एक सरकारी संस्थान में अधिकारी के रूप में कार्यरत.
हिंदी के क़रीब बीस लेखकों के साक्षात्कार.

लेखन : वागर्थ, वर्तमान साहित्य, परिकथा, पाखी व लमही पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित. 'बातें'– तेजेंद्र शर्मा के साक्षात्कारों की पुस्तक संपादित.

अन्य : आकाशवाणी से रचनाएं प्रसारित और रेडियो पर कई परिचर्चाओं में हिस्सेदारी. मंचन से भी जुड़ीं, जन संपर्क में रुचि.
'कथा यूके' से गत अठारह वर्षों से जुड़ी हैं.

लगती है. उसके बिना चाय में मज़ा ही नहीं आता.

उसने किचन के पत्थर पर अदरख रखी और बेलन से कूटने लगी. उसे लगता है कि अदरख के बिना भी कोई चाय बनती है भला. लगता है कि दूध और शक्कर का ग़रम पानी पी रहे हैं. उसे गैस पर उबलती चाय बहुत अच्छी लगती है.

गैस तेज़ करो तो कितनी तेज़ी से ऊपर आती है और धीमी कर दो तो कितनी शांति से नीचे की ओर चली जाती है. वह चाय उफ़ान के साथ तब तक खौलाती रही जब चाय ढंग से पक नहीं गयी और इलायची तथा अदरख की ख़ुशबू उसके नथुनों में भर नहीं गयी.

जब बढ़िया गुलाबी चाय बन गयी तो उसे अपने प्याले में छाना और ट्रे लेकर बालकनी की ओर चल दी. साथ ही गाती जा रही थी, ''मेरी चाय बनी है आला, इसमें डाला गरम मसाला.''

गिरीश ने कनखियों से रिंकी को देखा और पूछा, ''तुम जो गाना गाती आ रही हो और अपनी चाय की तारीफ़ में कसीदे काढ़ रही हो तो तुम कितने चम्मच शक्कर डालती हो?''

रिंकी ने कहा, ''मैं कभी शक्कर या कोई भी चीज़ चम्मच या चमचे से नापकर नहीं डालती. अंदाज़ से डाल लेती हूं. हां, इस बात का ध्यान रखती हूं कि चाय, चाय जितनी ही मीठी लगे, शर्बत न लगे.''

इस तरह बात करते-करते चाय पी ली गयी. घड़ी देखी तो सुबह के सात बज रहे थे. वह नाश्ता बनाने चल दी और गिरीश नहाने. रिंकी ने झटपट पोहे बनाये और टेबल पर प्लेट वग़ैरह रख दीं.

गिरीश भी तैयार होकर आ गये और नाश्ता करके आनन-फ़ानन में ऑफ़िस चल दिये. गिरीश के ऑफ़िस जाने के बाद रिंकी के पास कुछ समय खाली होता है. सो उसने अख़बार उठाया और ख़बरें पढ़ने लगी. क़रीब दस बजे उसने गिरीश को फ़ोन किया कि वे दफ़्तर पहुंच गये हैं या नहीं?

रिंकी का यह नियम रहा है कि वह दस बजे गिरीश को फ़ोन ज़रूर करती है. वे रिंकी की इस आदत से भी ख़ासे परेशान हैं. कई बार कहते भी हैं कि ऑफ़िस जाकर भी रिंकी मैडम के मस्टर में साइन करना होता है कि वे समय से ऑफ़िस पहुंच गये हैं.

उन्हें टूर पर जाना बहुत पसंद है. जब ऑफ़िस उन्हें टूर प्रोग्राम देता है तो वह शाम बहुत ख़ुशगवार होती है. ऐसा ही कुछ उस शाम को भी हुआ. शाम को गिरीश जब घर आये तो आते ही बोले, ''मुझे कल ऑफ़िशियली दिल्ली जाना है, दो दिन बाद लौट आऊंगा.''

रिंकी के लिए यह कोई नयी बात नहीं है. वह 'ओके' कहकर काम में लग गयी. पिछले एक साल से रिंकी ग़ौर कर रही है कि गिरीश आये दिन दिल्ली ही जा रहे हैं. जहां तक उसकी जानकारी है उनके ऑफ़िस की शाखाएं और भी शहरों में हैं. आज उसने सोच लिया कि वह शाम को इस विषय पर गिरीश से पूछेगी.

शाम को गिरीश वापस घर आये. रिंकी ने चाय बनाकर दी. इसके बाद वे सोफ़े पर ही आंखें बंद करके लेट गये. रिंकी ने ख़ुद को तैयार किया और बोली, ''सुनते

हैं, ऑफ़िस आपको हर बार दिल्ली ही क्यों भेजता है? और भी तो शहर हैं.''

यह सुनते ही गिरीश की त्योरियां चढ़ गयीं. जल्दी से बैठ गये और बोले, ''मुझे ऑफ़िस कहां भेजता है, यह भी तुम तय करोगी? मुझे भेजा जाता है तो कुछ तो कारण होगा. मेरे मामलों में इतनी दिलचस्पी लेने की ज़रूरत नहीं है.''

रिंकी को गिरीश के भड़कने का कारण समझ में नहीं आया. वह बोली, ''अरे, पूछ लिया तो कौन-सी क़यामत आ गयी? ऐसा दिल्ली से कौन सा जुड़ाव है जो दिल्ली के नाम से भड़क जाते हो?''

अचानक माहौल तनावपूर्ण हो गया. वह चुपचाप किचन में चली गयी. उसने एक सब्ज़ी बनायी, रायता बनाया और रोटी सेंककर गिरीश को थाली दे आयी. गिरीश ने थाली देखकर कहा, ''एक ही सब्ज़ी? मैं इतना पैसा देता हूं तो क्या दो सब्ज़ियां नहीं ख़रीदी जा सकतीं?''

रिंकी ने पहले तो कोई जवाब नहीं दिया पर कुछ सोचकर बोली, ''दो सब्ज़ियां बिल्कुल बन सकती हैं, पर एक सब्ज़ी से भी खाने की आदत होना चाहिए.'' कहकर वह रसोई में गयी और अपने लिए दो रोटी सेंकी, उन्हें देशी घी से तर किया.

उससे बिना घी की रोटियां खायी ही नहीं जातीं. पता नहीं लोग कैसे सूखी रोटी खा लेते हैं. जब उसके मेहमान बिना घी की रोटी की मांग करते हैं तो वह बिदक जाती है और कह देती है कि शरीर के लिए चिकनाई भी ज़रूरी है.

सूखी त्वचा और सूखा शरीर किस काम का? बस ऐसे ही सोचते-सोचते वह किचन में ही खाना खाने बैठ गयी. रात के नौ बजे गिरीश ने अपना बैग तैयार किया और जल्दी सोने चले गये. दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला. लग रहा था कि दिल्ली का नाम लेकर मानो रिंकी ने बहुत बड़ी ग़लती कर दी थी. वह भी आख़िर क्यों न पूछे. पत्नी सिर्फ़ खाना बनाने और बिस्तर में साथ देने के लिए होती है? वह भी करवट लेकर सो गयी. सुबह पांच बजे अलार्म बजा.

रिंकी ने उठकर चाय बनायी. गिरीश तैयार होने लगे. वे कुछ भी नहीं बोल रहे थे और ऐसा करके मानो यह ताक़ीद दी जा रही थी कि भविष्य में रिंकी ध्यान रखे कि उसे गिरीश से क्या पूछना है और क्या नहीं.

ख़ैर... आख़िर पांच बजकर पैंतालीस मिनट पर गिरीश चले गये. रिंकी ने भी इस बात को ज़्यादा हवा नहीं दी. इसमें कोई बुरी लगनेवाली बात है ही नहीं. वह चादर तानकर फिर से सो गयी. दो दिन गिरीश नहीं थे सो रिंकी को किसी काम की जल्दी नहीं थी. दिन भी अपना और रात भी अपनी.

दो दिन बाद गिरीश आये. अच्छा-ख़ासा मूड लगा उनका. रिंकी भी चुप रही. वह कोई भी ऐसी बात नहीं करना चाहती थी कि घर का माहौल बिगड़े. गिरीश ने आते ही कहा, ''देखो, अब ग़ुस्सा मत होना. मुझे अगले हफ़्ते फिर से दिल्ली ही जाना होगा. कल दिल्ली में ही तय हो गया है.''

रिंकी ने कहा, ''आप दिल्ली जाते हैं तो अपने माता-पिता से मिलते हैं या नहीं?'' इस पर गिरीश ने आंखें मिलाये बिना कहा, ''समय कहां मिलता है वहां जाने का. दो घंटे का रास्ता है. आने-जाने में ही पूरा दिन निकल जायेगा.''

इस पर रिंकी ने सहमति जताते हुए कहा, ''हां, इस बात का भी ख़्याल रखना होता है कि यह ऑफ़िशियल टूर है, कहीं कुछ ग़लत हो गया तो ऑफ़िस को उत्तर देना भारी पड़ जायेगा. ऑफ़िस के नियम के अनुसार आप दिल्ली से बाहर भी नहीं जा सकते.''

इस पर गिरीश कुछ बोले नहीं और गर्दन झटककर वॉशरूम चले गये. इस बीच रिंकी के दिमाग़ में दिल्ली को लेकर हज़ारों सवाल और शंकाएं उमड़ने-घुमड़ने लगीं. कहीं गिरीश का दिल्ली में कोई चक्कर तो नहीं है?

दूसरी औरत....रिंकी के मन में यह सवाल जितनी जल्दी आया उतनी ही तेज़ी से रिंकी ने उसे दिमाग़ से निकाल फेंका. उसे लगा कि यदि इस तरह के विचारों को बढ़ावा दिया तो शक़ करने की आदत भी अपने आप पैदा हो जायेगी और उसे पता भी नहीं चलेगा.

सप्ताह का वह दिन भी आ गया जब गिरीश को फिर दिल्ली की फ़्लाइट लेनी थी. हमेशा की तरह गिरीश फिर दिल्ली के लिए रवाना हो गये. दोपहर के समय रिंकी अपने बक़ाया काम पूरे कर रही थी कि मोबाइल की घंटी बज उठी. बेटे का फ़ोन था.

उसने फ़ोन उठाया, ''बेटे कैसे हो? आज तुमने फ़ोन कैसे किया? सब ठीक तो है?'' वह हंसते हुए बोला, ''सारे सवालों का जवाब कैसे दूं? सब ठीक है. आप तो रोज़ फ़ोन

करती हो बिना नागा. सोचा कि आज मैं फ़ोन कर लूं.''

बेटे से ढेर सारी बातें कीं. दिल हल्का हुआ. घड़ी देखी तो शाम के चार बजनेवाले थे. उसने सोचा कि आज मॉल पर जाया जाये और ज़ेब ढीली की जाये. सो उसने बिना किसी देर के हवाई चप्पल पहनीं और दरवाज़ा बंद करके नीचे उतर गयी.

टूर तो दो दिन का ही होता है और दो दिन बीतते समय ही कितना लगता है. गिरीश दिल्ली टूर से रात को वापिस आये और आते ही सोफ़े पर लेट गये और बोले, ''बहुत थक गया हूं. ये टूर भी बस, थका देते हैं और आंखें बंद कर लीं.''

रिंकी ने कहा, ''इतनी भी क्या जल्दी है सोने की? दिल्ली का ट्रिप कैसा रहा? घर-परिवारवालों से मुलाक़ात हुई?'' इस पर वे झुंझला गये और बोले, ''आते ही सवालों की झड़ी लगा दी. किसी से मुलाक़ात नहीं हुई. वैसे भी दिल्ली का नाम सुनकर तुम बिदक जाती हो.''

रिंकी ने कहा, ''कुछ तो ऐसा हुआ होगा न मेरे साथ दिल्ली में कि उस शहर के नाम मात्र से मेरे दिमाग़ की नसें तड़क जाती हैं. बिना वजह तो कुछ नहीं होता न. कभी मेरे मन की बात जानने की कोशिश की है आपने?''

यह सुनकर गिरीश चुप हो गये. कोई भी तो जवाब नहीं था उनके पास. लेकिन उन्होंने हार मानना तो सीखा नहीं है सो बोले, ''दिल्ली ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो उसके नाम से और वहां मेरे ऑफ़िशियली जाने पर भी इतनी चिढ़ जाती हो.''

रिंकी ने बड़ी सधी आवाज़ में उत्तर दिया, ''दिल्ली को लेकर मेरे अनुभव सुखद नहीं हैं. यह आप अच्छी तरह जानते हैं. आपको याद है न कि हमारे पहले बेटे के जन्म के सवा महीने बाद आपने बड़े चाव से मुझे दिल्ली भेजा था कि आपके पिता ख़ुश होंगे अपने पोते को देखकर. ... लेकिन ख़ुश होने के बजाय उन्होंने और आपकी मां ने फरवरी की भरी सर्दी में मुझे और बच्चे को पैसेज़ में सोने की जगह दी थी और ऐसी रजाई जिसमें से बच्चों के पेशाब की दुर्गंध आ रही थी. ... जब मैंने दूसरी रजाई मांगी तो कह दिया गया कि यह बच्चा भी पेशाब करेगा तो नयी रजाई ख़राब हो जायेगी. इसी रजाई से काम चलाओ. मैं सुनकर सन्न रह गयी था. फिर बच्चे के कपड़े छत पर धोने के लिए कहा गया. ठंडे पानी से मेरे हाथ जकड़ जाते थे. वह भी किया.''

इस पर गिरीश बोले, ''पुरानी बातों को दोहराने से क्या फ़ायदा? होता है ऐसा. ससुराल में ये सब बातें सामान्य हैं.'' इस पर रिंकी बुरी तरह चिढ़ गयी और बोली, ''आपके घर में यह सब सामान्य होगा. मेरे लिए यह अपमान था.''

रिंकी का क्षोभ इतना ग़हरा था कि वह क्या बोल रही है, इसका उसे भान तक नहीं है. गिरीश हैरान से देखे जा रहे थे. रिंकी ने अब तक उन बातों को याद रखा है, उनको आश्चर्य हुआ.

वह कहे जा रही थी, ''वे लोग हमारे माता-पिता बनने से ख़ुश नहीं थे, यह संकेत भी था. मैं यह सब नहीं भूल सकती. ये बातें मेरे दिल पर लिख गयी हैं. जब कभी उन लोगों से मिलती हूं, वे सारी बातें चलचित्र की तरह आंखों के सामने घूम जाती हैं.''

दिल्ली में बहुओं को जला दिया जाता है, यह ख़बर आये दिन टीवी पर देखने और सुनने को मिलती थी. एक बार तो एक व्यक्ति को दिखाया गया जो अपनी पत्नी के शरीर पर शराब डालकर आग लगा रहा था, वह भी एक साथ नहीं, रुक-रुककर.

वह सीन आज भी रिंकी को भूल नहीं पाता. वह ख़ुद को उस जगह रखती है तो कांपकर रह जाती है. दिल्ली के लोगों की बेदिली को टीवी पर देखते-देखते रिंकी ने तय कर लिया था कि वह कभी दिल्ली नहीं जायेगी बसने के लिए और संयुक्त परिवार में तो बिल्कुल नहीं.

उसका दिल और कड़वाहट से भरे, उसके पहले ही उसने स्वयं को उन तकलीफ़ भरे दिनों से बाहर निकाला और तभी गिरीश ने कहा, ''इस बात का विश्वास करो कि मैं अपने माता-पिता से हमेशा नहीं मिलता. तुम तो कहती हो पर मैं ही नहीं जाता.''

रिंकी ने गिरीश का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा, ''अच्छा करते हैं एक तरह से. अब आपका अपना परिवार है. कोई भी पसंद नहीं करता कि बेवजह जाकर किसी को परेशान किया जाये.''

इस पर गिरीश बोले, ''मुझे आश्चर्य होता है कि तुम शादी के बाद दो दिनों के लिए भी अपने मायके नहीं गयीं रहने के लिए. क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि तुम्हें जाना चाहिए? उन्हें भी तो लगता होगा कि तुम उनके पास जाकर रहो.''

इस पर वह सिर्फ़ इतना ही बोली, ''मेरे माता-पिता बहुत समझदार हैं. उनको परिवार का अर्थ सही मायनों में पता है. उन लोगों को बिल्कुल नहीं पसंद की बिना वजह बोरिया बिस्तर लेकर पहुंच जाओ.''

गिरीश ने एक अंगड़ाई लेते हुए कहा, ''वह तो ठीक है पर यह भी सच है कि अब तुम्हारे लिए अपने परिवार को तो छोड़ नहीं सकता. वैसे भी उनको छोड़कर तुम्हारे साथ रह रहा हूं. ख़ून का रिश्ता है, उन्हें छोड़ना मुमकिन नहीं.''

इस पर रिंकी ने कहा, ''हर बात का उल्टा अर्थ क्यों लगा लेते हैं? आपके ये ख़ून के रिश्ते मुझे बड़े भारी पड़ रहे हैं. रही बात, साथ रहने की तो आप मेरे साथ रहकर भी मेरे साथ नहीं हैं. आप वहां जाते नहीं हैं पर अवचेतन में तो वहीं रहते हैं.''

इस पर गिरीश ने कहा, ''तुम्हारे शक़ की आदत का कोई इलाज़ नहीं है. मैं कुछ नहीं बताता, इसका यह मतलब नहीं कि मैं झूठ बोलता हूं. मेरी अपनी भी तो कोई ज़िंदगी है जहां तुम्हारे अलावा और भी लोग हैं.''

रिंकी ने बात को संभालते हुए कहा, ''मैंने शक़ नहीं किया पर जब आप मुझसे आंख मिलाकर बात नहीं करते तब शक़ का कीड़ा ज़रूर कुलबुलाता है कि कहीं मेरे पति को झूठ बोलने की आदत तो नहीं पड़ती जा रही?''

इस बातचीत के बाद पंद्रह दिन तो ठीक बीते. सोमवार को गिरीश ने ऑफ़िस से फ़ोन किया, ''सुनो, मुझे आज शाम को सीधे ऑफ़िस से ही चेन्नई जाना है. तुम एयरपोर्ट पर मेरे बैग में दो दिन के कपड़े लेकर आ जाओ.''

रिंकी ने गिरीश के कपड़ों का बैग तैयार किया और शाम पांच बजे एयरपोर्ट पहुंच गयी. गिरीश एयरपोर्ट पहुंच गये थे. रिंकी ने उनको बैग दिया. वे बोले, ''देखो, मैं चेन्नई जा रहा हूं. चाहो तो टिकट दिखा सकता हूं.''

रिंकी बात को आगे बढ़ाने के मूड में नहीं थी. सो बाय करके वह एयरपोर्ट से वापस घर के लिए चल दी. घर आकर एक कप चाय पी. न चाहकर भी उसका ध्यान दिल्ली के बारे में सोचने लगा.

वह उन कारणों का पता लगाने लगी जो गिरीश को दिल्ली की ओर टूर के बहाने ले जाते थे. नौकरी का मामला था, इसलिए कुछ कह भी नहीं सकती थी. रिंकी अपनी इस बात से ख़ुद भी परेशान रहती है कि वह सोचती बहुत है.

जिन बातों को लेकर वह परेशान होती है, उन बातों का सामनेवाले पर कोई असर नहीं होता. वह मस्त रहता है और रिंकी पर 'काजी जी दुबले क्यों? शहर के अंदेशे से' वाली कहावत पूरी तरह से चरितार्थ होती है.

ख़ैर... दो दिन बाद गिरीश वापस आये और साथ ही एक टूर का संदेशा भी. बोले, ''देखो रिंकी, टूर कोई मुझसे पूछकर तय नहीं करता. तुम्हारी मर्ज़ी के खिलाफ़ मुझे रविवार को फिर दिल्ली ही जाना है.''

कविता

नाकामी

✍ श्रीरंग

एक पत्रकार
गया बीहड़ों में
सीमा पार ली फ़ोटो
बनायी विडियो फ़िल्म...
पी उनके साथ चाय
मग्गे में,
लकड़ी के कुंदे पर बैठकर
खाया आधा तीतर अधपका,
बात की
उस बड़ी-बड़ी मूंछों वाले
आतंकवादियों के सरगना से,
वह देख आया सब कुछ और ले आया
तस्वीरें भी,
पर नहीं देख पायी सरकार,
नहीं देख पाये गुप्तचर,
नहीं देख पाये सैनिक सिपाही,
एक पत्रकार
आता जाता रहा
आतंकवादियों के कैंप में
पर नहीं जा पाये वहीं सैनिकों के दस्ते....!

१२८-एम/१-आर,
कुशवाहा मार्केट, भोला का पूरा,
प्रीतम नगर, इलाहाबाद.
मो. ९३३५१३३८९४

रिंकी ने कुछ कहे बिना सिर्फ़ नज़र उठाकर देखा. यह गिरीश को कैसे गंवारा होता? रिंकी और कुछ कैसे बोली नहीं.

सो बोले, ''अब घूरने की तो ज़रूरत है नहीं. वहां के ऑफ़िसर्स को मेरे काम करने का तरीक़ा बहुत पसंद है. सो नो चॉइस. पर एक बात कहता हूं शाम को तो पहुंचूंगा तो गेस्ट हॉउस में आराम करूंगा. पर तुम फ़ोन मत करना. मैं ही कर लूंगा.''

रिंकी ने इस बात पर कोई प्रतिक्रिया नहीं जतायी. वह चुप रही. गिरीश को जाना था तो जाना ही था. रविवार को वे दोपहर की बारह बजकर बीस मिनट की फ़्लाइट से रवाना हो गये.

दिल्ली पहुंचकर गिरीश ने फ़ोन किया, ''मैं दिल्ली पहुंच गया हूं. गेस्ट हॉउस की ओर जा रहा हूं. पहुंचकर फ़ोन करता हूं.'' रिंकी का दिल आशंका और शंका से विचलित हो रहा था. कारण उसे भी पता नहीं.

अंतत: शाम को पांच बजे फ़ोन आया, ''रिंकी, मैंने थोड़ा आराम कर लिया है. अभी कुछ लोग मिलने आयेंगे, सो तुम फ़ोन मत करना. फ्री होकर मैं करूंगा.'' रिंकी ने कहा, ''ठीक है. मैं तुम्हें डिस्टर्ब नहीं करूंगी. जब समय मिले, फ़ोन कर लेना.''

रिंकी का मन नहीं माना तो उसने शाम सात बजे फ़ोन किया. गिरीश ने फ़ोन उठाया और तनिक ग़ुस्से से बोले, ''मैं फ़ोन करनेवाला था. चैन नहीं है क्या?'' रिंकी ने सॉरी कहकर फ़ोन रख दिया.

रिंकी की आंखों में पानी भर आया. उसने सोचा कि वह क्यों इतनी केयर करती है गिरीश की, जबकि उन्हें इस बात की बिल्कुल चिंता नहीं है कि वह उनकी अनुपस्थिति में क्या करती है. खाना भी ढंग से खाती है या नहीं.

रिंकी को तो अब इस उपेक्षा की आदत पड़ गयी है. अब तो हालत यह है कि जब यह उपेक्षा नहीं मिलती तो हैरान होती है. रात को गिरीश का फ़ोन आया, ''जो लोग मिलने आये थे, वे चले गये हैं. मैं बहुत थक गया हूं. अब सोने जा रहा हूं. सुबह बात करते हैं.''

रिंकी ने घड़ी देखी. अभी तो नौ ही बजे हैं. ये तो इतनी जल्दी सोते नहीं हैं. रिंकी विचारों के चक्रव्यूह से स्वयं को निकालने की कोशिश कर रही थी. उसने इधर-उधर करवट बदली. उसे याद आया कि घर से दूर रह रहे बेटे से बात नहीं की है.

उसने बेटे का नंबर डायल किया, और मोबाइल को कान से चिपका लिया. उधर से फ़ोन उठाया गया और बेटे की आवाज़ आयी, ''मम्मी, मैं सोच ही रहा था कि आपका दो दिन से फ़ोन नहीं आया. तबियत तो ठीक है?''

रिंकी ने कहा, ''हां बेटे, सब ठीक है. तुम्हारे पापा आये दिन दौरे पर रहते हैं, बस कपड़ों के बैग ही बदलती रहती हूं.'' इस पर वहां से हंसने की आवाज़ आयी और बोला, ''आपको फ़ोन करना अच्छा लगता है. आप अपना टाइम फ़ोन पर पास कर लिया करो. चलो, मम्मी, गुडनाइट.''

रिंकी ने बेटे को गुडनाइट कहा और एक बार फिर अकेली. वह फ़ोन करने के लिए बहुत बदनाम है कि कोई उसे फ़ोन करे न करे पर वह अपने मित्रों को, रिश्तेदारों को फ़ोन करके हालचाल पूछती रहती है.

इस तरह अपनी दुनिया में, अपने विषय में सोचते-विचारते आंखें उनींदी होने लगीं परंतु पता नहीं किस कारण से आंखें बंद नहीं हो रही थीं. सैकड़ों विचार-कुविचार मन में आ जा रहे थे. आख़िर में उसने फ्रीजर में से ठंडी पट्टी निकाली और आंखों पर रखी.

कुछ ही समय में ठंडी पट्टी का ठंडापन ख़त्म हो गया और आंखों को नींद ने घेर ही लिया. अचानक रिंकी को फ़ोन बजने की आवाज़ सुनायी दी. उसने दो-एक बार ध्यान से सुना तब जाकर उसे भरोसा हुआ कि यह तो उसीका फ़ोन है.

एक तो इतनी मुश्किल से नींद आयी थी. किस निगोड़े को इस बेवक़्त रिंकी की याद आ गयी. घड़ी देखी तो रात का एक बजा था. उसने फ़ोन उठाया. वहां से आवाज़ आयी, ''आप कौन हैं?''

रिंकी ने उनींदी आवाज़ में कहा, ''फ़ोन आपने किया है. आपको पता होना चाहिए कि आपको किससे बात करना है.'' वहां से आवाज़ आयी, ''आप रिंकी हैं?'' अब रिंकी के कान सतर्क हो गये. बोली, ''जी कहिए. आप कौन हैं?''

''मैं डॉक्टर वासुदेवन हूं. आपके पति गिरीश और उनके पिता का एक्सीडेंट हो गया है. बहुत सीरियस एक्सीडेंट है. आप जितनी जल्दी हो सके, दिल्ली आ जायें. पेपर साइन करवाने हैं.''

एच-१/१०१,रिद्धि गार्डन्स,
फिल्म-सिटी रोड, मालाड (पूर्व),
मुंबई-४०००९७.
मो. - ९८३३९५९२१६

कहानी

प्रत्यावर्तन

✍ ताराचंद मकसाने

मैं रघुलीला मॉल' के कैश काउंटर पर बिल का भुगतान करने के लिए कतार में खड़ी थी, तभी एक महिला जो ठीक मेरे पीछे खड़ी थी, मेरे बैग में रखे ढेर सारे सामान का मुआयना करते हुए बोली — ''एक्सक्यूज़ मी, क्या मैं पहले बिलिंग करवा दूं. मेरे पास दो ही आईटम हैं और मैं थोड़ी जल्दी में भी हूं. प्लीज़?''

मुझे आवाज़ थोड़ी परिचित लगी, मैंने पीछे मुड़कर देखा तो मैं लगभग चिल्ला पड़ी — ''हाय शिवानी, यू आर हियर, इन मुंबई! इतने साल कहां ग़ायब हो गयी थी, बैंगलूर से मुंबई कब आयीं, सुबोध कैसा है, वह क्या कर रहा है, उसकी शादी हो गयी क्या, बहू क्या करती है, तुम दादी मां बनीं या नहीं?'' मैंने अपनी पुरानी सहेली के वर्षों बाद अचानक मिलने की ख़ुशी में अति उत्साहित होकर सवालों की गोलियां दागनी शुरू कर दी थीं.

मैं और शिवानी मुंबई में एक ही ऑफ़िस में वर्षों तक साथ थे. दोनों का साथ में चाय पीना, लंच करना, गप्पें मारना नित्यकर्म था. ऑफ़िस में हम दोनों की दोस्ती एक मिसाल बन गयी थी. शिवानी कहने को तो मेरी बॉस थी पर केबिन के बाहर उसका बर्ताव एक अदद सहेली से कम नहीं था. मेरे लिए वह बॉस कम और सहेली ज़्यादा थी. शिवानी जब भी केबिन से बाहर निकलती मेरे पास ज़रूर आती, भले ही कुछ काम हो या न हो, मेरा ध्यान होने पर एक मस्त स्माइल देती और ध्यान न होने पर एक हल्की चिकोटी काट कर चली जाती! शिवानी की एक और आदत थी वह हमेशा मेरे गले में हाथ डालकर चलती थी. कई बार मेरे गले में हाथ डालकर लगभग मुझे घसीटते हुए कैंटीन में ले जाती और कान में धीरे से कहती — ''चल सुधा, चाय का एक-एक पेग हो जाये, मुझे बहुत सुस्ती आ रही है.''

और मैं अपना काम बीच में छोड़कर बिना कुछ बोले उसके साथ रवाना हो जाती थी. मैं और शिवानी कई मर्तबा ऑफ़िस छूटने के बाद भी ऑफ़िस के सामने फुटपाथ पर स्थित टपरीनुमा चाय की दुकान पर कटिंग चाय की चुस्कियों का देर तक लुत्फ़ उठाते थे और एक-दूसरे की सुख-दुख की बातें शेयर करते थे.

शिवानी हमेशा अनुशासन और संस्कारों पर ज़ोर देती थी. उसका यह मानना था कि ज़िंदगी में अनुशासन होना बहुत ज़रूरी है, अनुशासन के बिना जीवन दिशाहीन हो जाता है. साथ ही वह अच्छे संस्कारों की भी सदा दुहाई देती थी. शिवानी को कार्यालय में स्टाफ़ सदस्यों की अनुशासनहीनता कतई पसंद नहीं होती थी. वह कई बार अनुशासनहीन कर्मचारियों पर बरस पड़ती थी.

मुझे आज भी अच्छी तरह याद है, एक बार शिवानी ने मुझसे कहा था — ''सुधा, एक बात याद रखना, जिस बच्चे पर बचपन में अच्छे संस्कार होते हैं वह आगे चलकर एक आदर्श नागरिक बनता है. अच्छे संस्कार न केवल हमें समाज और राष्ट्र के अनुरूप चलना सिखाते हैं बल्कि हमारे जीवन की दिशा भी तय करते हैं. भारतीय संस्कृति में मनुष्य को राष्ट्र, समाज और जनजीवन के प्रति ज़िम्मेदार और कार्यकुशल बनाने के लिए जो नियम तय किये गये हैं उन्हें ही संस्कार कहा जाता है.''

मैं और शिवानी अक्सर अपनी संतानों के कैरियर के बारे में बातें किया करतीं. शिवानी अपने इकलौते बेटे सुबोध के बारे में बहुत सजग रहती थी, उसके मित्र कौन-कौन हैं, उनका बैकग्राउंड क्या है, उनके माता-पिता क्या करते हैं, उसके घनिष्ठ मित्र कौन हैं इस बारे में वह पूरी और अपटूडेट जानकारी रखती थी. शिवानी नहीं चाहती थी कि उसका बेटा ग़लत दोस्तों की संगत में पड़े. वह कभी-कभार सुबोध के सभी मित्रों को अपने घर पर भी बुलाती थी तो कभी उसके एकाध मित्र के घर किसी बहाने चली भी जाती थी. दरअसल शिवानी की यह कोशिश रहती थी कि सुबोध के दोस्त सर्वोत्तम हों और वह होशियार बच्चों की संगत में रहे.

सुबोध भी अपने माता-पिता का आज्ञाकारी बेटा था. अनुशासन तो उसमें कूट-कूट कर भरा था, मैं जब भी अपने पति के साथ शिवानी के घर जाती तो सुबोध आगे बढ़कर हमारे चरण स्पर्श करता. सुबोध बातचीत में 'आप' और

१९ अगस्त १९५९, दौंड, जिला-पुणे,
बी.कॉम

लेखन – *दिल्ली प्रेस की पत्रिका 'सरिता', 'मुक्ता' में फ़िल्मी कलाकारों के ढेरों साक्षात्कार प्रकाशित जिनमें स्मिता पाटील, नौशाद अली, आनंद बख्शी, सई परांजपे, डॉ. जब्बार पटेल, अमीन सयानी, पीनाज मसानी, दादा कोंडके, अशोक सराफ, अशोक पत्की, रोहिणी हट्टगडी, वनराज भाटिया, नाना पाटेकर, सदाशिव अमरापुरकर, महेंद्र कपूर, अलका याज्ञिक, सुरेश वाडकर आदि प्रमुख हैं. पिछले कुछ समय से बच्चों के लिए कहानी लेखन, 'सुमन सौरभ', 'बालभारती' में कई कहानियां प्रकाशित. 'कथाबिंब' के लिए यह पहली कहानी.*

विशेष – *८० के दशक में लंबे समय तक 'कथाबिंब' के लिए संपादकीय सहयोग करने का सौभाग्य मिला जो मेरे लिए गर्व की बात है. साथ ही 'कथाबिंब' के लिए प्रसिद्ध व्यंग्यकार शरद जोशी का साक्षात्कार करने का अवसर नसीब हुआ जिसे मैं अपने जीवन की एक उपलब्धि मानता हूं.*

संप्रति – *भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई में सहायक प्रबंधक.*

'जी' जैसे आदारार्थी शब्दों का प्रयोग अधिक करता. मैंने उसे कई बार किचन में अपनी मम्मी की सहायता करते हुए भी देखा था. मैं और मेरे पति उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे और हमें पूरा यक़ीन था कि सुबोध का भविष्य बहुत उज्जवल है. वह ज़रूर अपने माता-पिता के साथ-साथ अपने देश का नाम भी रोशन करेगा.

''मैडम, आपका ध्यान किधर है? आपका बिल तैयार हो गया है, प्लीज़ जल्दी से पेमेन्ट कीजिए आपके पीछे लंबी लाइन लगी है.'' काउंटर गर्ल ने चिल्लाकर कहा तो मैं अतीत से वर्तमान में लौटी.

मैंने जल्दी से पेमेन्ट किया और अपना सामान लेकर मॉल से बाहर आ गयी. मेरी नज़रें शिवानी को तलाश रही थीं. मॉल में मेनगेट पर खड़ी शिवानी से मेरी नज़रें मिलीं जिनमें मेरी प्रतीक्षा का प्रबल भाव प्रखरता से प्रकट हो रहा था. शिवानी ने मुस्कराकर मुझे अपनी ओर आने का इशारा किया, मैं तुरंत उसके क़रीब पहुंच गयी. शिवानी ने बिना कुछ बोले मुझे खींचकर अपनी बाहों में भींच लिया, वह कुछ बोलने की कोशिश कर रही थी पर उसका गला रुंध गया, जुबां ख़ामोश हो गयी थी पर उसके नैनों से निकलनेवाले आंसुओं ने बहुत कुछ कह दिया था.

शिवानी दुबली-पतली और बहुत थकी हुई लग रही थी, चेहरा पीला पड़ गया था. शिवानी की सूरत पर पहले जैसा नूर नज़र नहीं आ रहा था. आंखें भीतर धंसी हुई थीं जो अपनी चमक खो चुकी थीं. जिस चेहरे का मुस्कान से चोली-दामन का नाता था वह आज मुरझाया-सा प्रतीत हो रहा था. शिवानी के बर्ताव में एक ग़ज़ब का चुलबुलापन हुआ करता था जो आज मुझे दूर-दूर तक नज़र नहीं आ रहा था. एक ज़माने में जिसकी रेशमी जुल्फ़ों पर कई लोग फिदा हो जाते थे आज वे जुल्फ़ें चार उंगली की एक पतली चोटी में तब्दील हो गयी थीं. मुझसे रहा न गया. मैंने शिवानी की बांहों से अलग होते हुए उसे झकझोर कर पूछा — ''शिवानी, यह क्या हाल बना रखा है, तुम्हें क्या हो गया है, सब ख़ैरियत तो है ना?''

''अरी पगली, सब ठीक ही तो है. क्या हो गया है मुझे, ठीक ही तो लग रही हूं. अब उमर भी तो हो गयी है मेरी.'' शिवानी ने महज़ औपचारिकतावश कहा लेकिन उसकी बात मेरे गले नहीं उतरी. मुझे शिवानी की बात पर यक़ीन नहीं हुआ. वह ज़रूर मुझसे कुछ छिपा रही थी.

''शिवानी, तुम मुझ से ज़रूर कुछ तो छिपा रही हो, सच बताओ ना तुम्हें क्या हो गया है?'' मैंने लगभग

डांटते हुए किंचित आवेश में शिवानी से पूछा.

शिवानी के नयन फिर सजल हो गये, वह मेरा हाथ पकड़ कर बोली — ''पगली, मुझे फिर रुलायेगी क्या? मैंने कहा न कि मैं बिल्कुल ठीक हूं.'' मैं समझ गयी कि शिवानी इस वक़्त कुछ भी कहने के मूड में नहीं है. शाम का वक़्त था, मॉल में काफ़ी भीड़ भी थी. शिवानी को ज़्यादा कुरेदना मुझे ठीक नहीं लग रहा था.

मैंने बात बदलते हुए कहा — ''शिवानी, ठीक है, यह तो बताओ कि तुम बंगलूर से मुंबई कब आयीं और कहां ठहरी हुई हो.''

''सुधा, हमें बंगलूर से मुंबई आये क़रीब पांच-छ महिने हो गये हैं. हमने लोखंडवाला कॉम्प्लेक्स में फ़्लैट ख़रीद लिया है.'' कहते हुए शिवानी की आंखें फिर डबडबा गयीं. उसने अपने पर्स से विजिटिंग कार्ड मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा — ''सुधा, अभी मैं थोड़ी जल्दी में हूं, घर पर श्रीनिवास अकेले ही हैं, उनको दवा देने का वक़्त हो गया है. कल शनिवार है, तुम्हारी छुट्टी भी है, घर पर आ जाना. आराम से बातें करेंगे.'' कहते हुए शिवानी मेरे जवाब की प्रतीक्षा किये बिना पार्किंग ज़ोन की ओर बढ़ गयी. मैं बुत बनी वहीं पर खड़ी रही और शिवानी को जाते हुए अपलक तब तक देखती रही जब तक वह मेरी आंखों से ओझल नहीं हो गयी.

उस रात मैं ठीक सो नहीं पायी. शिवानी का कभी खिलखिलाता चेहरा तो कभी बुझा हुआ पीला चेहरा बार-बार मेरी आंखों के सामने आ रहा था. शिवानी के साथ बिताये सुख-दुख के पल किसी फ़िल्म के दृष्यों की तरह मेरे मानस पटल पर आ-जा रहे थे. मैं अपनी बेचैनी अपने पति से छुपा कर नहीं रखना चाहती थी. उन्हें शिवानी के मुंबई में शिफ़्ट हो जाने के साथ-साथ उसकी मौज़ूदा दशा से भी अवगत कराया तो मेरा जी थोड़ा हल्का हो गया.

दूसरे दिन दोपहर में भोजन आदि से निवृत्त होकर मैं शिवानी के घर पहुंच गयी. शिवानी ने दरवाज़ा खोलते हुए कहा — ''आओ सुधा, मैं तुम्हारा ही इंतज़ार कर रही थी.''

हॉल में उसके पति श्रीनिवास बैठे हुए थे, उनसे मेरा परिचय करवाते हुए शिवानी ने कहा — ''सुधा, ये मेरे पति हैं, मिस्टर श्रीनिवास.''

मैं बीच में बोल पड़ी, ''अरे शिवानी, इनसे क्यों परिचय करवा रही हो, आपसे तो मैं कई बार मिल चुकी हूं, फिर अनुज आप ही के पास तो इंग्लिश और मैथ्स पढ़ने के लिए आता था. कॉलोनी के अधिकांश बच्चे भी आपके घर पढ़ने के लिए आते थे.'' कहते हुए मैंने उन्हें नमस्कार किया.

''यस, यस, नो इंट्रोडक्शन प्लीज़, आई नो, आप तो शिवानी की बेस्ट फ्रेंड हैं. अक्सर हमारे घर पर आपका आना होता था.'' श्रीनिवास ने हंसते हुए कहा तो माहौल थोड़ा हल्का-फुल्का हो गया. शिवानी के उदास चेहरे पर हंसी की चंद रेखाएं उभरीं तो मुझे अच्छा लगा.

शिवानी चाय-नाश्ते की तैयारी के लिए किचन जाने लगी तो मैं भी उसके पीछे चली गयी. मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि शिवानी के मन की थाह कैसे ली जाये. बातों बातों में मैंने शिवानी से पूछा — ''सुबोध दिखायी नहीं दे रहा है, कहां है वो आजकल, क्या कर रहा है?''

मेरा सवाल सुनकर शिवानी के चेहरे के भाव एकदम से बदल गये. आंखें नम हो गयीं, वह शून्य में ताकने लगी. मुझे लगा कि मैंने शिवानी की दुखती रग पर हाथ धर दिया है. मैंने उसका हाथ पकड़ कर धीरे से कहा — ''शिवानी, क्या हुआ, कुछ सीरियस तो नहीं है, सब ठीक तो है ना?''

''नहीं, ऐसी बात नहीं है. सुबोध अमरीका में है.'' शिवानी ने उत्तर दिया.

''यह तो अच्छी बात है, मगर शिवानी, तुम्हारी आंखों में आंसू क्यों उतर आये?'' मैंने उसकी आंखों में झांकते हुए कहा.

''सुधा, हमने सुबोध से रिश्ता तोड़ दिया है.'' शिवानी ने गहरी सांस लेते हुए कहा.

''क्या?'' मैं लगभग चिल्ला पड़ी.

''हां, सुधा यह सच है. अब सुबोध से हमारा कोई रिश्ता नहीं है. इसलिए तो हम बंगलूर से हमेशा-हमेशा के लिए मुंबई में आ गये हैं. हमने बंगलूर में अपना पैतृक मकान तक बेच दिया है.'' शिवानी ने थोड़ा संभलते हुए कहा.

''ऐसा क्या कर दिया सुबोध ने कि तुम्हें इतना सख़्त क़दम उठाना पड़ गया?'' मैंने जिज्ञासावश पूछा.

शिवानी ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे किचन में रखी कुर्सी पर बिठाते हुए कहा — ''सुधा, मैं दरअसल सुबोध के बारे में तुम्हें सब कुछ बताना चाहती थी परंतु परिस्थितियां कुछ ऐसी रहीं कि मैं तुम्हें चाहकर भी कुछ बता नहीं पायी. तुम तो जानती ही हो कि सुबोध के लिए मैंने और श्रीनिवास

ने अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया था. उस पर बेहतर संस्कार हों, वह एक अच्छा इंसान बने इसके लिए हमने उसके पालन-पोषण में, उसकी शिक्षा-दीक्षा में, उसके शौक़-मौज में कोई कसर नहीं छोड़ी थी. सुबोध की हर मांग, उसके हर शौक़ को हम अपना फ़र्ज समझकर ख़ुशी से पूरा करते थे. हमने अपने इकलौते बेटे की ख़ुशियों के लिए अपने सुखों की होली कर दी थी. लेकिन सुबोध ने हमारे संस्कारों की ऐसी मट्टी-पलीत कर दी कि अब उसे अपना बेटा कहने भी हमें शर्म आती है.

''ऐसा क्या गुनाह कर दिया सुबोध ने?'' मैंने बीच में ही शिवानी की बात काटते हुए कहा.

''सुधा, मैं और श्रीनिवास चाहते थे कि सुबोध अपने देश में ही रहे और लोगों की सेवा करे. अच्छे, निष्णात और सेवाभावी डॉक्टरों की इस देश को ज़्यादा ज़रूरत है. सुबोध ने जब 'एमबीबीएस' किया तब हमने उससे कहा कि वह 'एमएस' बंगलूर में ही करे परंतु उसने यूएस जाने का मन बना लिया. सुबोध ने अपने कैरियर का हवाला देते हुए ऐसी कई दलीलें पेश कीं कि हम उसके इरादे को बदलने में नाकाम साबित हुए. सुबोध के ब्राइट कैरियर में हमें किसी भी रूप में बाधक बनना कतई पसंद नहीं था. हमने सुबोध को विदेश जाने के लिए अपनी भविष्य निधि से एक बड़ी रक़म निकालते समय एक पल का भी विचार नहीं किया था, क्योंकि हमारे समक्ष सुबोध का उज्जवल भविष्य सर्वोपरि था. सुबोध ने यूएस जाने से पहले एक आश्वासन देकर हमारा दिल जीत लिया था कि वह 'एमएस' करने के बाद स्वदेश लौटेगा और अपने देश के लोगों की सेवा करेगा. उसके इस आश्वासन से हम स्वयं को गर्वित महसूस करने लगे थे, हमें सुबोध का यह आश्वासन हमारे संस्कारों का अंजाम ही लग रहा था.''

''तो अब कहां है सुबोध? कहां प्रैक्टिस कर रहा है?'' मेरी जिज्ञासा चरम सीमा पर थी.

''नहीं सुधा, सुबोध अमेरिका में ही सेटल हो गया है. अब वो यहां पर कभी नहीं आयेगा.'' शिवानी ने शांत स्वर में कहा.

''क्या?'' मेरी चीख़ निकल पड़ी.

''सुधा हमें उसके यूएस में सेटल होने का दुःख नहीं है मगर...'' कहते हुए शिवानी कुछ गंभीर हो गयी.

''मगर क्या?'' मैं बीच में बोल पड़ी.

''सुबोध ने हमारे सख़्त विरोध के बावजूद अपनी बैचमेट सेलिना नामक एक कैनेडियन लड़की से शादी कर ली, जिसे हमने बाद में स्वीकार भी कर लिया क्योंकि हमारे लिए अपने बेटे की ख़ुशियां अहम थीं. हम चाहते थे कि सुबोध भारत में आकर विवाह करे तो हमें अधिक ख़ुशी होगी, परिवार के लोग भी इस विवाह में शामिल होंगे, परंतु सेलिना इसके लिए राज़ी नहीं हुई, वह भारत नहीं आना चाहती थी. दोनों का विवाह वहीं पर हुआ. हमें ज़िंदगीभर अफ़सोस रहेगा कि हम अपने बेटे के विवाह में शरीक नहीं हो सके. सुबोध ने बताया कि सेलिना उसके विचारों के अनुरूप है और वह अपनी पत्नी के रूप में सेलिना जैसी लड़की की ही तलाश में था. हमें सुकून मिला कि सुबोध को अपने पसंद की लड़की मिल गयी है. मैंने अपने मित्रों और रिश्तेदारों को इस बारे में बताया, उनके साथ अपनी ख़ुशी शेयर की, सभी लोग बहुत ख़ुश थे. सबने मुझसे एक अच्छी पार्टी की मांग की जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया. फिर हमारी भी मंशा थी कि अपने बेटे के विवाह की ख़ुशी में एक शानदार रिसेप्शन आयोजित किया जाये जिसमें अपने सभी मित्रों एवं परिवार के सदस्यों को आमंत्रित किया जाये.

शिवानी अतीत में पहुंच चुकी थी. मेरे ज़ेहन में विचारों का तूफ़ान अभी भी उठा हुआ था. मैं सोच रही थी कि सुबोध ने आख़िर ऐसी कौन सी भूल कर दी कि शिवानी ने उससे हमेशा के लिए रिश्ता तोड़ दिया. सुबोध के विवाह के उपलक्ष्य में आयोजित रिसेप्शन का आमंत्रण मुझे भी मिला था परंतु मैं किन्हीं कारणों से बंगलूर जा नहीं पायी थी. शिवानी बोलते-बोलते बीच में रुक कर चाय के घूंट भी ले रही थी.

''एक दिन मैंने सुबोध को फ़ोन किया कि तुम्हारे विवाह की ख़ुशी में हम एक शानदार रिसेप्शन करना चाहते हैं. इसी बहाने हम अपनी बहू को भी देख लेंगे और अपने परिवार के क़रीबी रिश्तेदारों से उसका परिचय भी हो जायेगा. इस रिसेप्शन के लिए सुबोध तुरंत राज़ी हो गया. हमने दो महिने बाद की तारीख़ निश्चित कर दी. हम दोनों ने रिसेप्शन की ज़ोरदार तैयारी शुरू कर दी. बंगलूर के मशहूर केटरर्स से हमने संपर्क किया. आलीशान हॉल बुक किया. महंगे और बेस्ट क्वालिटी के आमंत्रण पत्र छपवाये. हम अपने क़रीबी रिश्तेदारों एवं मित्रों को व्यक्तिगत रूप

से आंमत्रित कर रहे थे. मुंबई के मेरे और श्रीनिवास के कई मित्रों ने बंगलूर आने का प्रोग्राम बना दिया था. मुझे बहुत ख़ुशी हो रही थी कि मुंबई में मेरे साथ काम करनेवाले मेरे कलीग्स मुझसे वर्षों बाद मिलेंगे.'' शिवानी ने कहा.

''परंतु सुधा...'' कहते हुए शिवानी रुक गयी, मेरा हाथ पकड़कर बोली — ''सुबोध और सेलिना जिस दिन आने वाले थे. उसके एक दिन पहले सुबोध ने फ़ोन पर बताया कि सेलिना अपनी मम्मी के पास केनॅडा चली गयी है, कल उसके मम्मी-पापा की मैरिज़ एनिवर्सरी है. जिस दिन हमारा रिसेप्शन है उसी दिन उनकी मैरिज़ एनिवर्सरी है. सेलिना और मुझे भी उनकी शादी की वर्षगांठ की तारीख़ याद नहीं थी वर्ना हम रिसेप्शन चार दिन बाद रख लेते. सेलिना तो भारत आने के लिए तैयार थी वह इस पार्टी में नहीं जाना चाहती थी पर उसकी मम्मी ने बहुत 'फ़ोर्स' किया तो वह अपने आपको रोक नहीं सकी. फिर सेलिना की मम्मी बहुत 'इमोशनल' भी हैं. अगर सेलिना नहीं जाती तो उन्हें बहुत बुरा लगता. उन्होंने मुझे भी बुलाया है. मम्मी प्लीज़, ट्राई टू अंडरस्टैंड माई सिचुएशन. मेरा और सेलिना का यह सुझाव है कि क्या हम यह रिसेप्शन थोड़ा पोस्टपोंड नहीं कर सकते...''

मैं बीच में बोल पड़ी, ''शिवानी, तुमने फटकारा नहीं सुबोध को? इतनी तैयारी कर लेने के बाद ऐन वक़्त पर इतना बड़ा आयोजन पोस्टपोंड या कैन्सल करने का मतलब!''

''नहीं सुधा, ग़ुस्सा तो मुझे भी बहुत आया था पर मैं सागर की तरह शांत रही, मैंने उससे कुछ नहीं कहा, मैं अपना क्रोध निगल गयी. मैंने सुबोध से कहा कि ठीक है. तुम दोनों का वहां जाना ज़रूरी है तो चले जाओ. तुम्हारे लिए शायद अपने सास-ससुर की शादी की वर्षगांठ ज़्यादा अहम है. तुम्हारी शादी तो हो चुकी है. रिसेप्शन फिर कभी रख लेंगे, और नहीं भी रखेंगे तो लोग दो-चार दिन बोलेंगे फिर धीरे-धीरे भूल जायेंगे.'' शिवानी ने बहुत ही शांतचित्त से अपनी बात समाप्त की.

मैंने शिवानी से कहा — ''शिवानी, तुमने उसे रिसेप्शन की तैयारी के बारे में क्यों नहीं बताया और इसके कैन्सल किये जाने के कारण होनेवाले आर्थिक नुक़सान से आगाह करना था ना? तुम दोनों ने रिसेप्शन की तैयारी के लिए दिन-रात एक कर दिया था. यह तो सुबोध को बताना था?''

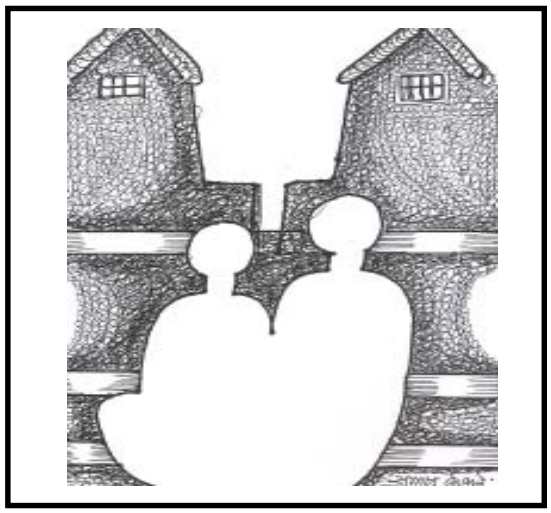

शिवानी ने कहा — ''सुधा मैं जानती थी कि सुबोध से बहस करके कोई फ़ायदा होनेवाला नही था. उन्होंने जब यहां न आने का मन बना लिया था उसके बाद बात बढ़ाने का कोई मतलब नहीं था. हमने अपने मन को समझा लिया और आमंत्रितों से माफ़ी मांगते हुए उन्हें फ़ोन, ईमेल व एसएमएस द्वारा रिसेप्शन कैन्सल होने की बात बता दी. सुधा, यह सब करते वक़्त हम पर क्या गुज़री होगी, इसका अंदाज़ा तुम लगा सकती हो.''

मैंने शिवानी का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा — ''मैं समझती हूं शिवानी, तुम उन दिनों कितने बुरे दौर से गुज़री होगी. तुम्हें मना करने से पहले सुबोध को कुछ तो सोचना चाहिए था. बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तब उनके पंख लग जाते हैं.''

''सुधा, इस घटना के बाद कई महीनों तक न तो सुबोध ने मुझे फ़ोन किया न ही मैंने सुबोध को. मुझे भी ग़ुस्सा आया था, मैं भी बहुत दिनों तक अपसेट रही. जो हो गया उसे भुलाने की कोशिश करने लगी. अपनी हॉबीज़ में रुचि लेने लगी. मेरा रिटायरमेंट भी नज़दीक आ रहा था. मैं रिटायरमेंट के बाद नयी ज़िंदगी की शुरुआत के सपनों में खो गयी थी कि एक दिन सुबोध का फ़ोन आया. उसने हमें एक ख़ुशख़बर सुनायी. उस ख़ुशख़बर ने हमारे मनमुटावों को पलभर में मिटा दिया. सुबोध ने बताया कि गुड न्यूज़ है तो मैं ख़ुशी से झूम उठी. मुझे दादी बनने का सौभाग्य प्राप्त होनेवाला था. मां-बाप के लिए अपनी संतान की ख़ुशियों से बढ़कर और कोई ख़ुशी नहीं होती है. सुबोध ने

जब यह कहा कि वह और सेलिना चार दिन के लिए बंगलूर आ रहे हैं तो हमारी ख़ुशियों में और इज़ाफ़ा हो गया. इस बार मैंने अपने क़रीबी रिश्तेदारों को बुलाकर एक छोटी-सी पूजा रखने का मन बनाया और यह बात मैंने तुरंत सुबोध और सेलिना को बता दी, जिसके लिए दोनों सहर्ष राज़ी हो गये.''

यह सब कहते हुए शिवानी के चेहरे पर ख़ुशी के भाव स्पष्ट नज़र आ रहे थे पर इन भावों के बीच बार-बार अपना सिर उठाता अफ़सोस मुझसे आंख मिचौली कर रहा था जिसे मैं साफ़ तौर पर देख रही थी. इस वक़्त मुझे शिवानी के ख़ुशनुमा मूड से सुकून मिल रहा था.

शिवानी अनवरत बोल रही थी — ''मैंने सुबोध और सेलिना के स्वागत की तैयारी शुरू कर दी. अपने क़रीबी रिश्तेदारों की सूची बनायी और सभी को आमंत्रित किया. परिवार के सदस्य सुबोध और सेलिना से मिलने के लिए बहुत आतुर थे. विशेष रूप से बहू के दीदार की तमन्ना सभी के मन में उछालें मार रही थी. हमने अपने घर का एक कमरा सुबोध और सेलिना के लिए सजाया, विदेशी बहू की आवभगत में कोई कमी न रह जाये इसके लिए मैंने और श्रीनिवास ने कमर कस ली थी. जिस दिन सुबोध आनेवाला था उस दिन श्रीनिवास एयरपोर्ट पर गये. मैं घर पर आरती की तैयारी में लग गयी. मेरी बहू पहली बार घर आ रही थी. परिवार के बच्चे तो विदेशी बहू को निहारने के लिए बहुत उतावले हो रहे थे. सुबोध और सेलिना नियत समय पर घर आ गये. सेलिना बेहद ख़ूबसूरत थी, सभी को बहुत पसंद आयी. उसके माथे पर मैंने कुंकुम का तिलक लगाया तो उसकी ख़ूबसूरती में चार चांद लग गये. परिवार के बच्चों ने उसे लंबे समय तक घेर कर रखा. उन्होंने सेलिना पर अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में सवालों की बरखा शुरू कर दी थी. सेलिना सभी के सवालों का जवाब शरारतपूर्ण अंदाज़ में मुस्कराकर दे रही थी. सेलिना का आगमन हमें ऐसे लग रहा था मानो मेरे घर में कोई फ़िल्मी हीरोइन आ गयी है. परिवार के लगभग सभी सदस्यों ने सेलिना को ढेर सारे उपहार भी दिये थे.''

कुछ पल रुककर शिवानी ने अपनी बात ज़ारी रखी — ''सेलिना जिस दिन आयी थी, उस रात तो अपने कमरे में रही, पर दूसरे दिन रात के भोजन के बाद सुबोध ने मुझ से हिचकिचाते हुए कहा कि वे दोनों शेष दिन होटल में बितायेंगे, दरअसल सेलिना बहुत 'ऑक्वर्ड' महसूस कर रही है, उसे ज़्यादा 'क्राउड' पसंद नहीं है. सुबोध ने घर से कुछ दूरी पर स्थित एक 'थ्री स्टार' होटल में एक सूट बुक करवाया था. मुझे यह सुनकर हैरानी हो गयी कि सेलिना अपने ही परिवार के सदस्यों को 'क्राउड' समझ रही थी, जब कि मैंने उससे कहा था कि ये सब हमारे और अब उसके भी क़रीबी रिश्तेदार हैं जो उसे भरपूर प्यार दे रहे थे. फिर बच्चे तो सेलिना को देखने और उससे बतियाने के लिए ही दूर-दूर से आये थे. सुबोध और सेलिना का होटल में ठहरना मुझे ही नहीं परिवार के किसी भी सदस्य को अच्छा नहीं लगा था लेकिन हमने नाराज़गी का भाव अपने दिल में दबाकर रखा, चेहरे पर प्रकट होने नहीं दिया. चार दिन का समय पंख लगा कर बीत गया. सुबोध और सेलिना लौट गये. दूसरे दिन सभी रिश्तेदार रवाना हो गये. घर खाली हो गया. ख़ुशियां मानो हवा के एक झोके की तरह आकर लौट गयीं.''

मुझे लगा कि शिवानी ने अपने दिल की सारी बात कह दी है. वह ख़ामोश हो गयी तो मैंने पूछा — ''तो तुमने इतनी छोटी-सी बात के लिए सुबोध से रिश्ता तोड़ दिया?''

''नहीं रे पगली, मुझे सांस तो लेने दे, कब से अपनी राम कहानी सुना रही हूं.'' शिवानी ने पानी के दो घूंट लिये फिर किंचित आवेश में आकर कहा — ''सुधा मैं इतनी तो बेवक़ूफ नहीं हूं कि इतनी मामूली बात के लिए अपने बेटे से ही रिश्ता तोड़ दूं. दरअसल यहां से जाने के बाद सुबोध अपने काम में व्यस्त हो गया. वह कभी-कभार ही हमारे हाल जानने के लिए फ़ोन करता था. मैं रोज़ाना फ़ोन करती और बहू के हालचाल पूछ लेती. गर्भावस्था में किन-किन बातों का ख़ास ध्यान रखना चाहिए इस बारे में बहू को सलाह देती, उसे अपने खानपान के बारे में बताती, सेलिना मेरी बातें बहुत ध्यानपूर्वक सुनती थी. वक़्त अपनी रफ़्तार से आगे बढ़ रहा था, सेलिना को नौवा महिना लग गया था. एक दिन सुबोध ने हमसे कहा कि हम दोनों अमरीका आ जायें, सेलिना के पूरे दिन हैं, आपके आ जाने से सेलिना को काफ़ी मदद मिलेगी. मुझे और श्रीनिवास को यूएस जाने में कोई आपत्ति नहीं थी, मैं बैंक से रिटायर हो चुकी थी जबकि श्रीनिवास मुझसे दो वर्ष पूर्व रिटायर हो चुके थे. हम दोनों यूएस पहुंच गये. सेलिना ने मां बनने की संपूर्ण तैयारी स्वयं कर ली थी. सुबोध ने बताया कि यहां पर मां

लघुकथा

डस्टबिन

✍ नरेंद्र कौर छाबड़ा

अपने इकलौते बेटे को पालने के लिए पति-पत्नी ने अनेक कष्ट सहे. कमज़ोर आर्थिक स्थिति के चलते अपनी ज़रूरतों का गला घोंटते रहे लेकिन बेटे की हर ज़रूरत को सही ढंग से पूरा किया. केवल भौतिक सुख-सुविधाएं नहीं दीं बल्कि उसे नेक व आदर्श संस्कार भी दिये. उन्हें विश्वास था बेटा बड़ा होकर उनके बुढ़ापे का सहारा बनेगा.

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद बेटे को बड़ी कंपनी में बढ़िया नौकरी मिल गयी. मां-बाप बड़े प्रसन्न थे. बेटे के लिए सुघड़ संस्कारी लड़की की खोज में वे लगे ही थे कि एक दिन बेटे ने उन्हें बताया वह उसी की कंपनी में काम करनेवाली वनिता से शादी करने का फ़ैसला कर चुका है. मां-बाप के मन को आघात तो पहुंचा लेकिन बेटे की पसंद का ख़्याल रखते हुए उन्हें स्वीकृति दे दी.

बेटा अपनी मंगेतर के साथ रेस्तरां में बैठा कॉफी पी रहा था. भविष्य की योजनाएं बनायी जा रही थीं. एकाएक वनिता बोली – ''मैं तुमसे एक बात स्पष्ट कर लेना चाहती हूं. शादी के बाद तुम्हारे डस्टबिन कहां रखे जायेंगे?'' बेटा हैरानी से उसका मुंह देखते हुए बोला – ''मैं तुम्हारी बात नहीं समझा? डस्टबिन से क्या मतलब है तुम्हारा?''

''कम ऑन यार! इतनी सी बात नहीं समझते? तुम्हारे मां-बाप कहां रहेंगे? वृद्धाश्रम में या कहीं और दूसरे घर में...?''

बेटा पलभर के लिए स्तंभित रह गया. मां-बाप द्वारा मिले संस्कार गहरे बैठे थे. कुछ देर वह चुप रहा किंतु मन में सोच चलती रही. फिर उसने अपना निर्णय सुना डाला – ''मेरी ज़िंदगी में मेरे मां-बाप का स्थान सर्वोच्च है. उन्हें डस्टबिन का नाम देकर तुमने उनका अपमान नहीं किया अपितु मेरे मन में तुम्हारी जो छवि बनी हुई थी वह धूमिल हो गयी है. तुम अपने लिए दूसरे साथी की तलाश कर लो जो अपने मां-बाप को डस्टबिन समझने की हिम्मत रखता हो....''

बेटे ने अगले दिन मां से कह दिया, वह उनके द्वारा पसंद की गयी लड़की से शादी करने के लिए तैयार है.

✆ १८४, सिंधी कॉलोनी, जालना रोड, औरंगाबाद-४३१००५. मो. ९३२५२६१०७९.

बननेवाली महिलाओं के लिए कक्षाएं चलती हैं. माता को बच्चे के पालन-पोषण के तमाम तरीक़े सिखाये जाते हैं. फिर बहू स्वयं डॉक्टर होने से डिलीवरी में ज़्यादा परेशानी नहीं हुई. सेलिना ने अपनी ही तरह एक सुंदर बालक को जन्म दिया. हम दादा-दादी बन गये. सेलिना और सुबोध ने दूसरे ही दिन अपने बच्चे का नाम एलेक्स रखा. हमें यह नाम पसंद नहीं आया पर हमने विरोध नहीं दर्शाया क्योंकि इस मामले में वैसे भी हमारी कोई राय या सलाह नहीं ली गयी थी. मैं हर समय एलेक्स को छाती से लगाये रखती थी, एक दिन सेलिना ने कहा कि मैं इससे अधिक लाड़ करके इसकी आदतें बिगाड़ रही हूं. यहां पर बच्चे को गोद में खिलाने का वक़्त किसके पास है. बच्चे को गोद में लेकर बैठ गये तो हमारा काम कैसे चलेगा. सुबोध ने भी सेलिना की बात का समर्थन किया. उसने कहा कि मम्मी, सेलिना ठीक कह रही है तुम एलेक्स से ज़्यादा लाड़ करोगी तो उसकी आदतें ख़राब हो जायेंगी. तुम तो थोड़े दिनों के बाद चली जाओगी, फिर इसे कौन संभालेगा. सुबोध अपने बेटे एलेक्स को इलेक्ट्रिकल झूले में डाल देता और बटन दबा देता. मैं उसे मशीनी झूले में झूलते हुए देखती रहती. अब इस घर में मेरा और श्रीनिवास का मन ऊबने लगा. हमने कुछ ही दिनों के बाद यूएस को अलविदा कह दिया.''

मेरी जिज्ञासा अब भी पूर्ववत थी. आख़िर शिवानी ने सुबोध से हमेशा के लिए रिश्ता क्यों तोड़ दिया. वह अपने दिल की बात बता कर अपना जी हल्का कर रही थी. मैं शांतचित्त से शिवानी की बातें सुन रही थी.

''भारत लौटकर बहुत दिनों तक हमारे और सुबोध के बीच महज़ औपचारिक बातें होती थीं. कई बार सुबोध का महीनों तक फ़ोन नहीं आता था. हम यह सोचकर अपने मन को तसल्ली देते थे कि वह अपने काम में व्यस्त होगा. सुधा, तुम तो जानती हो कि मैं भरतनाट्यम में पारंगत हूं अत: मैंने अपनी ज़िंदगी की नीरसता से निजात पाने के लिए अपने कॉम्पलेक्स की लड़कियों को मुफ़्त में नृत्य सिखाना प्रारंभ कर दिया. श्रीनिवास ने भी अंग्रेज़ी और गणित की ट्यूशन्स शुरू कर दीं. अब हमारा वक़्त बेहतर तरीक़े से चल रहा था. वक़्त की घड़ी अपनी गति से चल रही थी. एक दिन हम दोनों ने सोचा कि इस दीपावली पर सुबोध, सेलिना और एलेक्स को बुला लेते हैं सब मिलजुल कर दीपावली मनायेंगे. सेलिना भी भारत के सबसे बड़े त्योहार का आनंद उठायेगी. हमें अपने पोते की बहुत याद आ रही थी फिर दीपावली के चार दिन बाद उसका जन्मदिन भी है. उसका दूसरा जन्मदिन भारत में मनायेंगे. दो दिन के बाद मैंने सुबोध को फ़ोन किया तो वह काफ़ी सीरियस लगा. पहले तो वह बहुत देर तक कुछ बोला भी नहीं, फिर रोने लग गया. रोते-रोते उसने जो कहा उसे सुनकर मेरे पैरों तले की ज़मीन खिसकने लगी, कहते हुए शिवानी एकदम गंभीर हो गयी. मेरी जिज्ञासा चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी. मैंने पूछा — ''ऐसा क्या कहा सुबोध ने?''

शिवानी किंचित संभल कर बोली — ''सुबोध ने कहा कि एलेक्स से अब हमारा कोई ताल्लुक नहीं है, जब एलेक्स पंद्रह महीने का था तभी मेरा सेलिना से तलाक हो गया. एलेक्स बहुत छोटा था इसलिए कोर्ट के फ़ैसले के मुताबिक उसकी कस्टडी सेलिना को मिल गयी. मैंने आपको इस बारे में नहीं बताया कि क्योंकि मैं ख़ामख़्वाह आपको टेंशन नहीं देना चाहता था.''

शिवानी ने कुछ समय के लिए अपनी आंखें मूंद लीं, क्षण भर बाद उसने आंखें खोलीं तो आंसू टपक पड़े. मेरी भी आंखें नम हो गयीं. शिवानी का गला रुंध गया, वह भी बोल रही थी — ''सुधा, उस दिन मैं फ़ोन पर आपे से बाहर हो गयी. मेरे सब्र का बांध टूट गया था. मेरे मनरूपी सागर में तूफ़ान आ गया. मैंने सुबोध से कहा कि मैं उसके सारे ग़ुनाह माफ़ करती रही. उसने यूएस में रहने का फ़ैसला किया, तब मैंने कुछ नहीं कहा. सेलिना से शादी की, मैं ख़ामोश रही पर तलाक की बात ने मुझे तोड़ दिया है. मुझे तुमसे यह उम्मीद नहीं थीं. मेरी शिक्षा-दीक्षा में ज़रूर कोई कमी रह गयी है. मेरे संस्कारों में अवश्य कोई ख़ामी रह गयी थी. हम रिश्तों को जोड़ने में यक़ीन करते हैं तोड़ने में नहीं. सुबोध, तुम्हारे इस अपराध के लिए मैं तुम्हें कभी भी माफ़ नहीं करूंगी, तुमने मेरी, अपनी और अपने परिवार के साथ-साथ अपने देश की भी बेइज़्ज़ती की है, ऐसे संस्कार तुम्हें कहां से मिले? अब तो मुझे तुम्हें अपना बेटा कहने में शर्म महसूस हो रही है इतना कह कर मैंने फ़ोन काट दिया. उसके बाद से आज दिन तक मैंने सुबोध से बात नहीं की,'' शिवानी ने आंसुओं से तरबतर आंखों को रुमाल से पोंछते हुए कहा.

हम बातें कर ही रहे थे कि बेल बजी, श्रीनिवास ने दरवाज़ा खोला, कुछ लड़कियों ने भीतर प्रवेश किया. मैं उनकी तरफ़ देखनी लगी. तब शिवानी ने कहा — ''सुधा, ये हमारे ही कॉम्प्लेक्स की लड़कियां हैं, इन्हें मैं नृत्य सिखाती हूं. शाम को इसी कॉम्प्लेक्स और आसपास की सोसायटीज़ के कुछ बच्चे आते हैं, जिन्हें श्रीनिवास अंग्रेजी और गणित पढ़ाते हैं. बंगलूर में सुबोध से जुड़ी यादें हमें अक्सर बेचैन कर देती थीं. इसलिए हम बंगलूर को हमेशा के लिए अलविदा कहकर मुंबई में आ गये. मुंबई शहर की यह ख़ासियत है कि यह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीना सिखा देता है. हमने यहां अपनी नयी ज़िंदगी शुरू कर दी है और यह ज़िंदगी हमें भरपूर आनंद दे रही है.''

मैंने घड़ी देखी, बहुत समय हो रहा था. फिर नृत्य सीखनेवाली लड़कियां भी बाहर हॉल में शिवानी की प्रतीक्षा कर रही थीं. मैं उठने लगी. शिवानी ने मेरे मन में हो रही उथल-पुथल को भांप लिया. उसने नृत्य सीखने आयी लड़कियों को बैठने का इशारा करते हुए मुझसे कहा — ''सुधा, आज मेरा जी हल्का हो गया है. कहते हैं न कि दु:ख बांटने से कम हो जाता है. बहुत दिनों बाद किसी अपने से अपने दिल की बात बतायी है. मैंने तुम्हारा तो कुशलक्षेम भी नहीं पूछा....'' कहते हुए शिवानी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा तो मुझे बरसों पहले की शिवानी याद आ गयी जो मेरे कंधे पर हाथ रखकर मुझे कैन्टीन ले जाती थी.

''शिवानी, मैं ठीक हूं और अब तुम मुंबई में अकेली नहीं हो, मैं तुम्हारे साथ हूं जो कुछ हुआ उसे भुलाना आसान नहीं है मगर उसे भुलाना ही तुम्हारे हित में होगा. शिवानी बहुत देर हो गयी है, अब मैं चलती हूं.

(कृपया शेष पृष्ठ ४२ पर देखें.)

कहानी

सरोकार अपने-अपने

✍ नीतू सुदीप्ति 'नित्या'

सुबह के दस बजने में पांच मिनट कम थे. साढ़े नौ बजे वाली बस नहीं आयी थी. जिस कारण दमण बस स्टैंट पर भीड़ बढ़ती जा रही थी. अलका हाथ में बड़ा सा थैला लिये बेचैनी से बस का इंतज़ार कर रही थी. दस बजकर दस मिनट हो गये, फिर भी बस नहीं आयी. अलका बस के इंतज़ार में खड़ी नहीं रह पायी और जाकर टैक्सी में बैठ गयी. भले टैक्सी का भाड़ा बीस रुपये था पर वह वापी जल्दी पहुंचेगी तो सही.

उसे सामान लेकर अपनी दुकान पर तीन बजे तक पहुंच जाना था. क्योंकि तीन बजे से ग्राहकों का आना शुरू हो जाता है. पांच घंटों में दमण से वापी जाना-आना, दस दुकानों में घूम-घूम कर अपनी श्रृंगार की दुकान के लिए कहीं से चूड़ियां तो कहीं से बिंदी, बकल, मेहंदी, पाटले और कानझुमके इत्यादि ख़रीदने होते थे. इतने में वह थक कर चूर हो जाती थी.

वह मन ही मन सोच रही थी कि पहले चूड़ी ख़रीदेगी या खिलौने ताकि जल्द से जल्द सब निपट जाये.

टैक्सी में दो लोगों की सीट खाली थी. ड्राइवर टैक्सी घुमाते हुए बस के इंतज़ार में खड़े यात्रियों के सामने पुकार रहा था ''वापी....वापी...'' ताकि जिसे जल्दी हो वह टैक्सी में बैठ जाये.

तभी टॉप-जींस पहने एक औरत आयी. उसके साथ दो बच्चे थे. लड़की की उम्र सात-आठ साल और लड़का क़रीब पांच साल के आस-पास था. ड्राइवर की सीट की बगल में दो यात्री बैठे थे. पीछे अलका थी और एक दूसरा यात्री. अलका की बगल में वह औरत बैठ गयी और अपनी गोद में दोनों बच्चों को बैठाने लगी. बैठने में उसे दिक्कत हुई तो उसने लड़की के लिए भी सीट ले ली. अपने घुटने पर बेटे को बैठा लिया. लड़की खिड़की के पास बैठ गयी. छह यात्रियों से भरी टैक्सी वापी के लिए चल पड़ी.

अलका अपने चश्मे को पोंछ कर उस लड़की से मुख़ातिब हुई. वह लड़की भी चश्मा पहने थी, ''आप कब से चश्मा पहन रही हैं?''

''तीन साल हो गये.'' जवाब उसकी मां ने दिया, ''कार्टून ज़्यादा देखती है. दिन भर टी. वी. के सामने ही बैठी रहती है.''

उस लड़की के चश्मे के कांच पर धूल जमी थी. कहीं-कहीं पानी की सूखी बूंदों के निशान भी थे.

अलका ने देखकर कहा, ''आप चश्मा साफ़ नहीं करतीं, गंदा हो गया है. गंदे चश्मे पहनने से आंखों की पॉवर और बढ़ती है.''

''यह बहुत आलसी है,'' औरत ने ही जवाब दिया, पर मां या बेटी ने चश्मा निकालकर पोंछना ज़रूरी नहीं समझा.

लड़की टैक्सी से भागती हुई हरियाली देख रही थी. उसके खुले काले और सुनहरे बाल हवा से लहरा रहे थे जिससे वह सुंदर दिख रही थी.

''मम्मी, बाल बांध दो.'' चेहरे पर आ रहे बालों को पीछे करते हुए उसने कहा.

उसकी मम्मी ने पर्स से बालों की क्लिप निकाल कर बाल बांध दिये. ''आप कहां....?''

अचानक एक कुत्ता दौड़ते हुए सड़क पर आ गया, ड्राइवर ने झट से ब्रेक मारा. सभी आगे की ओर झुक गये. अलका ने उस छोटे लड़के को पकड़ा ताकि आगे की सीट से उसे चोट न लगे. तभी दो कुत्ते भौं-भौं करते हुए वहां आये. पहले वाले कुत्ते के मुंह में किसी जानवर की हड्डी थी. वहां उन कुत्तों को देख वह दूसरी तरफ़ भागा. वे कुत्ते भी उसके पीछे दौड़ पड़े.

टैक्सी चल पड़ी.

''आप वापी जा रही हैं?'' औरत ने अलका से पूछा.

''हां. और आप?''

''वापी ही मेरा घर है. यहां दमण में कल एक बर्थ-डे पार्टी में आयी थी. आपके कितने बच्चे हैं?'' उसने पूछा.

२० नवंबर १९८०; बहिया, जि.भोजपुर (बिहार)
शिक्षा - मैट्रिक

प्रकाशन - हिंदी और भोजपुरी में एक सौ रचनाएं प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, जमशेदपुर (झारखंड) से भोजपुरी उपन्यास 'संवरी' का भाग-१२ तक प्रकाशन, आगे जारी...

संप्रति - स्वतंत्र लेखन और स्वरोजगार

''नहीं हैं.''

''मम्मी...मम्मी, कितना बड़ा होटल....'' वह लड़की बाहर देखते हुए चहक पड़ी.

सभी का ध्यान उस होटल की तरफ़ चला गया. दमण और सोमनाथ के बीच एक छोटा सा कस्बा वरकुंड पड़ता है. उसी शांत इलाके में 'वंडरवर्ड रिसॉर्ट' नया खुला था. दूधिया रंग का रिसॉर्ट बहुत दूर तक फैला हुआ था. बाउंड्री के बाहर सड़क की तरफ़ कतार से रिसॉर्ट की पूरी गोलाई में छोटे-बड़े पौधे लगे हुए थे. जिससे रिसॉर्ट की ख़ूबसूरती और बढ़ गयी थी.

''मम्मी, कभी हम इस होटल में खाना खाने चलेंगे.''

''जो लोग हवाई ज़हाज में यात्रा करते हैं वे ही इस रिसॉर्ट में जा सकते हैं.'' ड्राइवर की बगल में बैठा टोपी वाला यात्री बोल कर चुप हो गया.

रिसॉर्ट की बात टैक्सी आगे बढ़ने के साथ ही ख़त्म हो गयी.

''तो शादी के कितने साल हुए?'' औरत ने छूटी हुई कड़ी को आगे बढ़ाया.

''चार साल.''

''आप अच्छे डॉक्टर को दिखाती क्यों नहीं? मेरी भी बहन की शादी के ज़्यादा साल होने के बाद भी बच्चा नहीं हुआ था. वापी में एक वात्सल्य हॉस्पिटल है. मेरी बहन ने वहां दिखाया तो उसकी गोद भर गयी. आप भी वहां के डॉक्टर को दिखाइए.''

''हूं.'' अलका चुप हो गयी. उसने बात आगे नहीं बढ़ायी और दूसरी तरफ़ की खिड़की से सोमनाथ की सड़कें देखने लगी.

औरत की बात उसे तीर की तरह लगी थी. वह सोच रही थी साधारण औरत हो या टॉप-जींस वाली मगर इस मामले में सबकी एक ही सोच रहती है और राय भी सब एक ही देती हैं, ''आप डॉक्टर या किसी ओझा-महात्मा को क्यों नहीं दिखातीं.''

ऐसे ही उसे अपनी श्रृंगार की दुकान पर इस तरह के सवालों से सामना करना पड़ता है. जो भी ग्राहक औरत सामान लेने आती है तो बातचीत के लहजे से जान जाती है कि यह यू.पी.-बिहार की है या अलका भी उनकी गंवई भाषा पकड़ लेती है. अपनी दुकानदारी सही चले इसलिए वह ग्राहक औरतों से हंसमुख और मिलनसार व्यवहार रखती है. दुकानदारी के मामले में तो उसका यह व्यवहार अच्छा रहता है पर इसी का फ़ायदा उठाकर उन औरतों को उसकी निजी ज़िंदगी में झांकने का मौक़ा मिल जाता है जो वह कतई नहीं चाहती.

एक बार अलका दुकान का सामान सजा रही थी. तभी दो औरतें आयीं, ''भाभी, जिउतिया है क्या?''

''हां.''

'कितने की?''

''दस की एक.''

''बाप रे दस की एक? हमारे यहां तो दो रुपये में मिलती हैं.''

''यू.पी.-बिहार में मिलती हैं यहां गुजरात में नहीं,'' अलका खीझ गयी थी.

''पंद्रह रुपये के दो दे दीजिए न!'' गोरी औरत थोड़ा प्यार से बोली ताकि दाम कम हो जाये.

जिउतिया का व्रत बहुत बड़ा व्रत होता है, औरतों के लिए अपने सुहाग की रक्षा के लिए जैसे हरियाली तीज और करवा चौथ होते हैं वैसे अपनी संतान की लंबी उम्र

लघुकथा

रूप जाल

✍ उर्मि कृष्ण

थककर चूर हुई, हांफ़ती दौड़ती वह तपस्वी के चरणों में गिर पड़ी. ''महात्मा आपके दर्शनों को बड़ी दूर से चलकर आयी हूं.'' कपड़े अस्त-व्यस्त, बाल रूखे, आंखों से बह रही थी जलधारा.'' तपस्वी मुझ पर दया करो. मैं बहुत दूर से कष्ट झेलते पैदल आपके चरणों में आयी हूं. मुझे अपनी शरण में स्थान दो तपस्वी!''

तपस्वी के नेत्र उस स्त्री पर टिक कर पथरा गये थे. ''महात्मा आपका दूर-दूर तक नाम है. आप सबके उद्धारक हो तपस्वी. मैं अकिंचन बहुत कष्ट सहकर यहां तक आपके दर्शन को पहुंची हूं. मेरे पैर पथरीले मार्ग पर चढ़ते-चढ़ते लहूलुहान हो गये हैं. मैं थककर हार गयी हूं. जीवन बड़ा कष्टप्रद है. आपकी शरण में हूं अब. मेरा उद्धार आपके हाथ है. हे तपस्वी! आप तो बहुत ऊंचे जग को जीते हुए महात्मा हैं. पुरुषोत्तम हैं, जग में आपका गुणगान हो रहा है.... आप बहुत पहुंचे हुए तपस्वी हैं.'' .... अश्रुधारा से भीग रही थी वह. तपस्वी ने पलकें झपकायीं. पलकें गिराने का यत्न किया पर व्यर्थ. वे अस्फुट शब्दों में उस अनिंद्य सुंदरी से बोले, ''महात्मा! पहुंचा हुआ था सुंदरी. अब नहीं....''

✍ *संपादिका 'तारिका', ए-47, शास्त्री कॉलोनी, अंबाला छावनी-133001 (हरियाणा)*

के लिए जिउतिया का व्रत होता है.

यही सोच अलका ने कहा, ''ठीक है.''

दोनों औरतों ने रेशम के धागों से बनी एक-एक जिउतिया ले ली.

गोरी औरत जिसकी नाक पर तिल था बोली, ''इसमें दो गांठें बांध दीजिए.''

''क्यों?''

''मेरे दोनों लड़कों के नाम से.''

''क्यों? सोने की जिउतिया इसमें नहीं डालना क्या?''

''अरे भाभी, वह तो गांव में ही छूट गयी. सादी जिउतिया पहन कर व्रत कर लूंगी.''

''आज तो नहा-खाये हैं न?''

''हां.''

''तब शाम को पकवान बनाकर चीलों-सियारों के नाम पर रखेंगी न?' गांठ बांधते हुए अलका पूछ रही थी.

''हां, बारह बजे रात को रखेंगे न उनके नाम पर. फिर उसी समय सरगही खायेंगे और कल से परसों तक चौबीस घंटों का निर्जल उपवास, तब पारणा. आप भी तो करती होंगी जिउतिया?'' मोटी औरत ने पूछ लिया.

''नहीं.''

''क्या आपके बच्चे नहीं हैं?'' गोरी औरत का यह सवाल अलका के दिल पर चाबुक मार गया.

उसने सोचा झूठ बोल दूं, क्योंकि कभी-कभी वह इस मामले में झूठ भी बोल दिया करती थी. लेकिन जिउतिया के पावन व्रत पर उसके दिल ने झूठ बोलने की इज़ाज़त नहीं दी.

उसने बोला, ''नहीं हैं.''

''आपकी शादी को कितने साल हुए?'' मोटी औरत का धमाकेदार सवाल.

''तीन-चार साल.''

''अरे बाप रे! इतने साल हो गये और आपको बच्चा नहीं हुआ. आप किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाती क्यों नहीं. दमण में एक धनवानी डॉक्टर हैं उन्हें दिखाइए न.'' मोटी औरत ने हमदर्दी दिखायी.

''भाभी, दवा के साथ दुआ भी करनी पड़ती है. तुम्हें जब समय मिलेगा तो मैं तुमको दमण के 'देवका बीच' के पास ले चलूंगी, वहां एक अच्छे साधु जी हैं. 'उपरिया' देखते हैं. सच मानों भाभी, मेरी चाल में एक औरत को बच्चा नहीं था. मैंने उसे साधु जी को दिखाया तो हाल ही में उसे लड़की हुई है. मेरी शादी के छह माह बाद भी गोद नहीं भरी तो मैं ख़ूब रोती थी...भाभी, तुम चलना, मैं दिखवा दूंगी.'' गोरी औरत बोलने के क्रम में तुम पर आ गयी थी.

''हूं.'' अलका ने कहा. वह जानती थी कि यही सब उसे सुनने को मिलेगा. अगर वह कभी झूठ भी बोल देती थी कि उसके बच्चे हैं तो औरतें पूछ बैठती थीं कितने बच्चे हैं? लड़का या लड़की? आपकी सास के पास रहते हैं या मां के पास? कैसे उन्हें छोड़कर आप यहां परदेस में रहती हैं? कैसे बच्चों के बिना आपका मन लगता है? वग़ैरह...

''और क्या चाहिए?'' अलका ने बात बदली.

''कुछ नहीं, भाभी, हम पारिवारिक लोग हैं. आपका दर्द हमारा दर्द. आप साधु जी के पास चलिएगा.'' कहकर दोनों औरतों ने मिलाकर पंद्रह रुपये दिये और चली गयीं. और अलका का दिल रो पड़ा.

ऐसे ही सवालों से उसे रोज़ दो-चार होना पड़ता है.

जब वह शादी नहीं कर रही थी और उसकी उम्र बढ़ती जा रही थी तब सब उसकी शादी के ही पीछे पड़े थे, ''अलका, तू शादी कब करेगी? तेरी उम्र निकली जा रही है. बूढ़ी हो जायेगी तब करेगी?''

और जब उसकी शादी हो गयी तो फिर सब उसके मां बनने के पीछे पड़ गये. यह समाज उसे या किसी को अपने तरीक़े से जीने नहीं देता. लोगों को अपनी नहीं बल्कि दूसरों की चिंता ज़्यादा रहती है.

हालांकि कमी अलका में ही थी. यह जानने के बाद वह बच्चा गोद लेने का या नीरज की दूसरी शादी कराने का फ़ैसला कर चुकी थी. पर नीरज दूसरी शादी नहीं करना चाहते थे. यह उसके लिए राहत की बात थी.

पर समाज का क्या कहना? जब वह कुंआरी थी तो समाज उसकी मांग में सिंदूर, गले में मंगलसूत्र और साड़ी पहने पति के साथ देखना चाहता था और शादी बाद देखना चाहता है उसकी गोद में बच्चा. तब वह नारी बनने का पूर्ण गौरव प्राप्त करेगी अन्यथा नहीं. भले उसके पति ने इस चाहत की उससे आशा नहीं की.

रात में नीरज ने अलका का उदास चेहरा देखा तो मज़ाकिया अंदाज़ में पूछा, ''आज मेरी बूढ़ी यों उदास क्यों है?''

नीरज प्यार से उसे 'बूढ़ी' कहते थे.

अलका ने सारी बातें उगल दीं ताकि उसका दर्द बाहर आ जाये. नीरज भड़क गये. ''तुम दुकानदारी करती हो या रिश्तेदारी? किसी भी ग्राहक को दुकानदार से यह पूछने का हक़ नहीं है कि उसकी शादी कब हुई और कितने बच्चे हैं? तुमने सामान बेचने का धंधा किया है न कि अपना इतिहास बताने का. दूसरे दुकानदार की तरह टाइट रहा करो ताकि सामान के दाम के अलावा तुमसे कोई दूसरा सवाल न पूछे.''

''ग़ुस्सा मत कीजिए. चलिए, खाना खा लीजिए,'' अलका ने नीरज का हाथ पकड़ते हुए कहा. ''ऐसे-ऐसे सवालों से मेरा भेजा सटक जाता है. आपके बच्चे कितने हैं, तो शादी कब हुई? कोई दमण में या दूसरी जगह जाकर किसी दुकानदार से यह पूछे तो वह अच्छी ख़बर लेगा.''

हाथ झटक कर भनभनाते हुए नीरज बाथरूम में घुस गये.

□

''रोकिए...रोकिए...'' अलका की बगल में बैठा यात्री ड्राइवर के कंधे को दबाते हुए बोला.

अलका की सोच की शृंखला टूटी.

ड्राइवर ने टैक्सी रोक दी. भाड़ा देकर वह यात्री जयश्री सिनेमा हाल के सामने उतर गया. उसके जाने के बाद बची हुई जगह में अलका और वह औरत पैर फैलाकर आराम से बैठ गयीं.

अलका ने देखा 'रा-वन' से ज़्यादा भीड़ 'डर्टी पिक्चर' की टिकट खिड़की पर थी.

टैक्सी चल पड़ी.

अलका बच्चे और सामाजिक लोगों के बीच का ताना-बाना बुन रही थी. तीन-चार मिनटों में वापी बस स्टैंड आ गया, ''हां, रोकिए....'' वह बीस का नोट ड्राइवर की तरफ़ करते हुए बोली.

एक झटके के साथ टैक्सी रुकी.

अलका भाड़ा देकर उतर गयी. और आगे चल पड़ी. उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे उस औरत का बड़ी-बड़ी आंखों वाला लड़का उसे देख रहा है कि शायद आंटी उतरते हुए उसे हाथ हिलाकर 'बॉय बेटे' कहेगी.

आभास होने के बाद भी अलका ने पीछे मुड़कर नहीं देखा कि कहीं उसकी आधुनिक मां यह न सोचे कि एक 'अनजानी-अनचीन्ही बांझ' ने उसके बेटे को 'बॉय' बोला.

आंखों की नमी को दिल में दफन कर सारी बातों को जेहन से निकाल वह होलसेल की दुकान महावीर नॉवेल्टी में घुस गयी.

पो.बा.नं. ४१,
सिलवासा-३९६२३०
(दादरा व नगर हवेली)
मो. ७६९८८२७०९७/९०३३५७९९५०

आमने-सामने

'साहित्य के द्वार पर मेरी अनवरत दस्तक!'

✍ हितेश व्यास

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्रिहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास और डॉ. रमाकांत शर्मा से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है हितेश व्यास की आत्मरचना.

मेरा जन्म १८ मार्च १९५१ को राजस्थान के जोधपुर में श्रीमाली ब्राह्मण पिता पंडित आर. मूलचंद व्यास और माता श्रीमती रुक्मणी देवी के यहां हुआ. मेरे पिता ने आजीवन एक ज्योतिषी के रूप में कार्य किया. हमारा पैतृक गांव पाली जिले का मांडा है. मांडा मेरी पितृभूमि है और जोधपुर मेरी मातृभूमि है. हम चार भाई, दो बहनें हैं. मैं सबसे बड़ा पुत्र हूं. मेरे तीन पुत्रियां व एक पुत्र है. पुत्र सबसे छोटा है.

साहित्य के साथ–साथ मेरी अभिनय में रुचि रही. स्कूल शिक्षा तक एकाभिनय करता रहा. १९७४ में राजस्थान संगीत नाटक अकादमी ने एक नाट्य शिविर प्रसिद्ध रंग-निदेशक स्व. एस. वासुदेव के निर्देशन में आयोजित किया. एस. वासुदेव को मैं अपना नाट्यगुरू मानता हूं. मैंने १० नये नाटकों में अभिनय किया तथा विजय तेंदुलकर के नाटक 'पंछी ऐसे आते हैं' का निर्देशन किया. एस. वासुदेव के अतिरिक्त मैंने सरताज नारायण माथुर व मदन मोहन माथुर के निर्देशन में भी कार्य किया है.

साहित्यिक आयोजनों में मैं अपनी टिप्पणियों के लिए चर्चित रहा हूं. किसी का व्याख्यान समाप्त हुआ नहीं कि मेरे प्रश्न तैयार रहते हैं. प्रतिक्रिया व्यक्त करने में मैं ओपनिंग बैट्समैन रहा हूं. एक बार एक गोष्ठी में कथाकार स्व. आलमशाह खान ने कहा कि मेरे रहते हितेश नंबर वन पर नहीं रह सकता. उन्हीं टिप्पणियों की क्षतिपूर्ति स्वरूप मैं देश की प्रतिनिधि पत्रिकाओं के ताज़ातरीन अंकों पर धारदार प्रतिक्रियाएं करता हूं, जो पत्र रूप में प्रकाशित भी होती हैं.

जब मैं अपने बचपन के ठेठ पीछे जाता हूं, तो इतना स्पष्ट याद है कि उस समय के पड़ोसी संगी के साथ उजाड़ में घूमते हुए यह सोचता था कि जीवन में कुछ विशेष करना है. क्या करना है, यह साफ़ नहीं था. राजस्थान के अजमेर जिले के ब्यावर कस्बे की यह बात है. मिडल कक्षाओं में पढ़ते हुए तुकबंदी शुरू हो गयी थी. पहली कविता अपने प्रिय अध्यापक श्यामलालजी पर लिखी, जिनका चेहरा

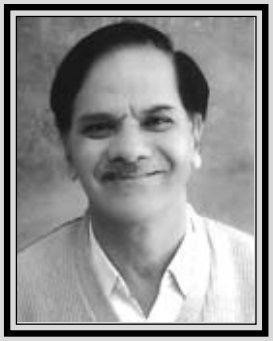

१८ मार्च १९५१, जोधपुर
बी. ए. व एम. ए.
(हिंदी साहित्य),
एम. फ़िल. (हिंदी साहित्य),
राजस्थान वि. वि. जयपुर,

प्रकाशन : *अगस्त १९६६ से कविताओं का प्रकाशन प्रारंभ, समीक्षास्त्र एवं कवितास्त्र देश भर की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, 'समानधर्मा' (१९८५), 'उत्तर समानधर्मा' (२०००), रेत से नदी तक' (२००७) तीन कविता संकलन. एक हिंदी ग़ज़ल संग्रह शीघ्र प्रकाश्य, ५ छात्रों के एम. फ़िल. के लघु शोध प्रबंध का निर्देशन, रचनाओं पर ३ छात्रों ने एम. फ़िल. उपाधि हेतु लघु शोध प्रबंध प्रस्तुत.*

विशेष – *१० नाटकों में अभिनय व १ नाटक का निर्देशन, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर द्वारा अभिनय प्रशिक्षण हेतु ६ माह की छात्रवृत्ति.*

अन्य – *१ नवंबर १९८७ को राजकीय लोहिया कॉलेज, चूरु में व्याख्याता हिंदी पद पर नियुक्त, तदनंतर बाड़मेर, जालोर, ब्यावर, कोटा, बूंदी, कोटा में कार्य करते हुए ३१ मार्च २०११ को राजकीय महाविद्यालय, कोटा से व्याख्याता-हिंदी पद से सेवा निवृत्त, कुल ३३ वर्ष ५ माह की राजकीय सेवा.*

१, मारुति कॉलोनी, पंकज होटल के पीछे, नयापुर, कोटा-३२४००१, मो. - ९४६०८५३७३६

अभिनेता अशोक कुमार से मिलता था. अब मैं सीधे अपनी पंद्रह वर्ष की वय में आ जाता हूं. राजस्थान के जोधपुर का यह घटनाक्रम है. मोहल्ला बदल गया है. शहर वही है. हमारे मोहल्ले से एक साप्ताहिक 'आपकी आवाज़' प्रकाशित होता था. पहली कविता २२ अगस्त १९६६ के अंक में प्रकाशित हुई. प्रारंभ में मैं बालकवि हितेश 'हितैषी' के नाम से लिखता था. राजस्थान साहित्य अकादमी से राजस्थान के प्रतिनिधि कवियों का काव्य संकलन 'रेत पर नंगे पांव' प्रकाशित हुआ है, जिसका संपादन नंद भारद्वाज ने किया है, इस संकलन में मेरे परिचय में संपादक ने मेरे पूर्व नाम बालकवि हितेश 'हितैषी' का उल्लेख किया है. पहली कविता में मेरे मित्र स्व. श्यामलाल दवे का नाम भी शामिल था, अर्थात यह संयुक्त रचना थी. पहली और आख़िरी संयुक्त नाम से छपी कविता. मैं कविता में रह गया, दवे निकल गया. हर अंक में कविता आने लगी. घर से कॉलेज के नाम से निकलना और अख़बार के मुद्रणालय में जा बैठना और अपनी कविता छपते देखना. एक मित्र की नकल में ऐच्छिक जीव विज्ञान विषय ले लिया. रुचि साहित्य में थी, भौतिक शास्त्र के पर्चे में कविता लिख आया. प्रधानाध्यापक कक्षा में कॉपी लेकर आये और सलाह दी कि मैं हिंदी-अंग्रेजी साहित्य लूं, विज्ञान छोड़ दूं. पारसजी की सलाह पर उस वक़्त तो अमल नहीं किया, परंतु स्कूल-विश्वविद्यालय में ५ वर्षों की बलि देने के बाद कला में आया. बी. ए. में प्रथम श्रेणी ने मेरा उत्साहवर्धन किया और एम. ए. में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर मैं जोधपुर विश्वविद्यालय की एम. ए. हिंदी परीक्षा १९७७ का स्वर्ण पदक प्राप्तकर्ता बना. राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से एम. फ़िल. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की. पीएच. डी. के लिए जोधपुर-जयपुर के विश्वविद्यालयों में पंजीकरण कई बार हुआ, किंतु आलस्य और काव्य-गोष्ठियों ने मेरा अकादमिक समय लील लिया. मैं आज तक अपीएच. डी. हूं. किंतु कई पीएच डियों में मैं संदर्भित और उल्लेखित हुआ. मैंने 'नया हिंदी नाटक और शंकर शेष' विषय पर एम. फ़िल. की उपाधि प्राप्त की और मेरी रचनाओं पर क्रमशः विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय और कोटा विश्वविद्यालय की एक-एक छात्राओं ने एम. फ़िल. की उपाधियां प्राप्त कीं. मेरे निर्देशन में पांच विद्यार्थियों ने एम. फ़िल. के लघु शोध प्रबंध प्रस्तुत किये. एम. ए. के परिणाम आते ही १ महीने १९ दिन बाद १ नवंबर १९७७ को मैं राजकीय महाविद्यालय, चूरु में व्याख्याता-हिंदी पद पर नियुक्त हो गया. बाड़मेर, जालोर, ब्यावर, बूंदी और कोटा के राजकीय महाविद्यालयों में ३३ वर्ष ५ माह सेवा करने के बाद मैं ३१ मार्च २०११ को निवृत्त हो गया. अ. पीएच. डी. होने की वजह से कॉलेज योनि ही में रहा और विश्वविद्यालय अध्यापन के अनुभव से वंचित रहा.

हितेश व्यास की ग़ज़लें

(१)

हवा में कोई भी सिक्का उछाल और फिर देख,
रगों में ख़ून को पहले उबाल और फिर देख.
हमेशा कुछ अलग अंज़ाम होगा हालात का,
ज़रा मशीन में सिक्के को डाल और फिर देख.
बहुत क़रीब से ऐ दोस्त हमला होता है,
जो हो सके तो तू इज़्ज़त संभाल और फिर देख.
बहुत ज़रूरी है मजमा यहां पे जीने को,
तू हाथ झोली से बाहर निकाल और फिर देख.
तुझे ख़ुद अपनी ही सूरत से घिन सी आयेगी,
तू अपने सच को भी पत्थर में ढाल और फिर देख.

(२)

है आपके भीतर भी सोया हुआ कबूतर,
चुपचाप अकेले में रोया हुआ कबूतर.
देखोगे तो पाओगे पहलू हैं कई इसके,
हर बार नये रंग का होया हुआ कबूतर.
इसको तो यही अपनी सुविधा का विभाजन है,
खुद के ही ख्यालों में खोया हुआ कबूतर.
इस घुप्प अंधेरे में वो दूर उजाला है,
कमज़ोर से कांधों पर ढोया हुआ कबूतर.

(३)

मेरी तुम्हारी बात को आप अन्यथा न लें,
इस दोस्ती के हाथ को आप अन्यथा न लें.
बचपन से बोलने की ही आदत है कुछ मेरी,
मेरी किसी भी बात को आप अन्यथा न लें.
अच्छा हुआ मकान का तुमने पता किया,
पर इस तनिक से साथ को आप अन्यथा न लें.
मां ने कहा कि बेटे तू आंखें झुका के चल,
मेरे झुके से माथ को आप अन्यथा न लें.

(४)

सारी उम्र बनाते रहते हम मिट्टी के घर,
सारी उम्र सजाते रहते हम मिट्टी के घर.
सचमुच की ये दुनिया उजड़ी जाने कितनी बार,
सारी उम्र बचाते रहते हम मिट्टी के घर.
खाम ख्याली में ही काटा हमने ये जीवन,
सारी उम्र मिटाते रहते हम मिट्टी के घर.
पानी का बस एक बुलबुला जीवन का सच है,
सारी उम्र बनाते रहते हम मिट्टी के घर.
ताजमहल की हमने यारो ऐसे रक्षा की,
सारी उम्र लुटाते रहते हम मिट्टी के घर.

(५)

अंधा कुआं गहरा पानी,
डोरी से लटकी जिनगानी.
गुम-सुम गुम-सुम मन का मौसम,
ऋतुएं तो सब आनी-जाना.
दुक्ख अचानक छापा मारे,
खुशियां करती आनाकानी.
हम हर बार उधर से निकले,
गलियां थीं फिर भी अनजानी.
छुप कर जिसने वार किया था,
सूरत थी जानी पहचानी.
अलग-अलग से राग-स्वरों में,
सब मुखड़ों की एक कहानी.
दीवारों से सर टकराती,
डोर उम्र की बड़ी पुरानी.

(६)

ये कैसी खलबल है,
दुनिया में हलचल है.
यह कैसा सन्नाटा,
कैसी चहल पहल है.
गहरे में मत जाओ,
गहरे में दल दल है.
किस किस में झांकोगे,
हर कोई घायल है.
भागोगे अब कैसे,
पग पग पर पायल है.
ख़ामोशी को तोड़ो,
कैसा कोलाहल है.

१९५१ का जन्मा मैं हितेश व्यास इस मायने में सौभाग्यशाली रहा कि १९६६ से मेरा लेखन, प्रकाशन और काव्य पाठ एक साथ आरंभ हो गया. जोधपुर में नेमिचंद्र जैन 'भावुक' नाम से एक गांधीवादी साहित्यकार-पत्रकार हुए हैं, जो गांधी अध्ययन केंद्र का संचालन तो करते ही थे, अंतर प्रांतीय कुमार साहित्य परिषद भी चलाते थे जिसकी बाड़मेर, जैसलमेर, भीनमाल, मेड़तासिटी आदि नगरों में शाखाएं सक्रिय थीं और हैं. मैं भावुकजी की संस्थाओं से सक्रिय रूप से जुड़ गया. बाहर भी जाने लगा. उनके केंद्र में श्री अशोक गहलोत भी आते थे जो वर्तमान में राजस्थान के मुख्यमंत्री हैं. भावुकजी के संचालन में मैंने प्रथम बार काव्य पाठ किया. फिर तो यह सिलसिला रुका ही नहीं. ४६ वर्ष से मैं काव्य गोष्ठियों में काव्य-पाठ कर रहा हूं. मेरे प्रथम काव्य संकलन 'समानधर्मा' की जनसत्ता में समीक्षा करते हुए भारतेंदु मिश्र ने लिखा कि मेरी कविताएं काव्य पाठ शैली की कविताएं हैं. मैं स्वयं को वाचिक परंपरा का एक कवि मानता हूं और मैंने मुक्त छंद और छंद मुक्त कविताओं को श्रवणीय बनाने की पुरज़ोर कोशिश की है. इसका यह तात्पर्य नहीं कि मैं छंद से दूर हूं. मैंने गीत भी लिखे हैं और हिंदी ग़ज़लें भी लिखी हैं. हिंदी ग़ज़ल से जुड़ाव की कहानी यह है कि सारिका ने दुष्यंत कुमार पर एक विशेषांक निकाला था. जिसमें दुष्यंत कुमार की १६ ग़ज़लें प्रकाशित थीं. दुष्यंत से प्रभावित होकर ग़ज़ल लिखने वालों में मैं ख़ुद को भी शुमार करता हूं. मैं एम. ए. उत्तरार्द्ध में पढ़ रहा था, मेरे एम. ए. पूर्वार्द्ध के रचनाकार साथी डॉ. अर्जुनदेव चारण जो आजकल राजस्थान संगीत नाटक अकादमी के अध्यक्ष हैं, भी ग़ज़लें लिखते थे. रोज़ एक-दूसरे को ताज़ा ग़ज़ल सुनाते थे. यह १९७६-७७ की बात है. मैंने ६०-६५ ग़ज़लें लिख डालीं. मेरे ही कारण ये सिलसिला रुका, मुझे यह लगने लगा कि अर्जुन की ग़ज़लें मेरी ग़ज़लों से प्रभावित हैं. मैंने उनके सामने यह व्यक्त भी कर दिया. परिणामस्वरूप क्रम भंग हो गया. अब वही ग़ज़लें एक संकलन 'तनी रहेगी ही रीढ़ उसकी' शीर्षक से शीघ्र प्रकाश्य है. 'कथाबिंब' १९७९ से प्रकाशित हो रही है. १९७९ ही से मेरी ग़ज़लों को 'कथाबिंब' ने स्थान दिया है. लगभग २५ पत्र–पत्रिकाओं में मेरी ग़ज़लें छपी हैं. राजस्थान के आकाशवाणी केंद्रों से उनका प्रसारण हुआ है. ग़ज़ल संकलन के प्रकाशन में विलंब का एक मात्र कारण उनका इस्लाहशुदा न होना रहा है. जबकि संकलन की भूमिका स्वर्गीय डॉ. विश्वभरनाथ उपाध्याय ने लिखी है, जो सुप्रसिद्ध आलोचक, उपन्यासकार और कवि रहे हैं. सह-भूमिका डॉ. रमाकांत शर्मा ने लिखी है जो 'कृति ओर' तथा 'प्रतिश्रुति' पत्रिकाओं के संपादक हैं. बहर के ज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण मैंने इस संकलन को रोके रखा. स्थगन की भी आख़िर कोई सीमा होती है और अब यह मंजरे आम पर आ रहा है.

१९६६ से कविता-लिखने-छपने के बावजूद मेरा पहला काव्य-संग्रह १९८५ में राजस्थान साहित्य अकादमी के आंशिक आर्थिक सहयोग से 'समानधर्मा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ. समानधर्मा शब्द मैंने भवभूति के एक प्रसिद्ध श्लोक से लिया है. जिसे उन्होंने उपेक्षा की पीड़ा के बाद लिखा था. 'समानधर्मा' की भूमिका मेरे गुरू स्वर्गीय डॉ. जगदीश शर्मा ने लिखी है, जो सौंदर्यशास्त्र के मौलिक आलोचक रहे हैं. दूसरा संकलन 'उत्तर समानधर्मा' सन् २००० में प्रकाशित हुआ. इसमें मैंने एक प्रयोग किया कि इसका फ़्लैप एक कथाकार और कथालोचक, 'अक्सर' के संपादक डॉ. हेतु भारद्वाज और इसकी भूमिका राजस्थान के सुप्रसिद्ध नाटककार रिज़वान ज़हीर उस्मान से लिखवायी. अर्थात काव्येत्तर विधा के स्वनामधन्य क़लमजीवियों से यह कार्य मैंने संपन्न किया. मेरा तीसरा और अब तक का आख़िरी काव्य संकलन 'रेत से नदी तक' सन् २००७ में मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ. इसकी भी दिलचस्प कहानी है. हुआ यह था कि, बहुत पहले कभी मैंने रमेश नीलकमल के काव्य नाटक 'बोल जमूरे' की 'प्रकर' में समीक्षा की थी. बात आयी-गयी हो गयी थी. वर्षों बाद रमेश नीलकमल का ख़त आया कि वे मेरा एक संकलन प्रकाशित करना चाहते हैं, जिसमें पूर्व प्रकाशित दोनों संकलनों की चुनिंदा कविताएं तो होंगी ही, नयी कविताएं भी होंगी. 'रेत से नदी तक' नाम भी रमेश नीलकमल ने रखा. उसकी भूमिका भी उन्हीं ने लिखवायी. मैं यह बताना भूल गया कि कविताओं के साथ-साथ मैंने समीक्षाएं भी लिखी हैं. मेरी कविताएं और समीक्षाएं देशभर की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई और हो रही हैं.

आजकल एक नया जुनून सवार हुआ है. आलोचनात्मक पत्र लेखन का. मैं किसी भी पत्रिका का ताज़ा अंक पढ़ता हूं और संपादक के नाम बेबाक़ी से

आलोचनात्मक प्रतिक्रिया का पत्र भेज देता हूं. मेरे पत्र हंस, कथादेश, आजकल, तद्भव, कथाक्रम, कथाबिंब, अक्षर पर्व, प्रेरणा, अविराम, अलाव, प्रतिश्रुति आदि में प्रकाशित हुए हैं और गुस्ताख़ी माफ़ हो तो मैं लिखना चाहूंगा कि मैं तो अपने पत्रों का संकलन निकालने की सोचने लगा हूं.

मैं एक और मामले में स्वयं को सौभाग्यवान मानता हूं. एक तरफ़ से मैं बचपन से ही साहित्यिक संसार का जीव रहा हूं, दूसरी तरफ़ अपनी विश्वविद्यालयी शिक्षा के साथ ही मैं अकादमिक जगत के जीवंत संपर्क में रहा हूं. मैंने जब बी.ए. भी नहीं किया था, डॉ. नामवर सिंह हमारे हिंदी विभागाध्यक्ष थे. उन्होंने मेरा जलवा देखा है. जब मैंने एम. ए. भी नहीं किया था, डॉ. मैनेजर पांडेय ने मुझे पढ़ाया. मुक्तिबोध की सर्वश्रेष्ठ कविता और नयी कविता की शिखर कविता 'अंधेरे में' मैंने डॉ. पांडेय के घर एक महीने तक लगातार जाकर पढ़ी है. एम. फ़िल. के दौरान डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय जयपुर में राजस्थान विश्वविद्यालय हिंदी विभागाध्यक्ष थे. डॉ. वीरेंद्र सिंह को मैंने गुरुत्रयी में आसीन किया है. अंतर अनुशासनीय आलोचना के वे प्रतीक पुरुष हैं. मुझे गर्व है कि मैं ऐसे मूर्धन्य आलोचकों का शिष्य रहा हूं. इसलिए मैं किसी से भी प्रभावित होने में देर लगाता हूं और प्रतिभा की कौंध दिखते ही नमन करने में किंचित भी संकोच नहीं करता हूं.

अंत में इस पाबूजी की पड़ को समेटते हुए मैं यह कहना चाहूंगा कि साहित्य के संसार में मैंने सफलता के झंडे नहीं गाड़े हैं, किंतु असफलता के मील के पत्थरों का उल्लेख किये बिना मेरी बात अधूरी रहेगी. अजमेर से प्रकाशित 'लहर' के संपादक प्रकाश जैन यह कहते रहे कि वे मेरी लीक से हटकर की हुई समीक्षा प्रकाशित करेंगे. एक बार विनोदमय क्षणों में उदयपुर के नंद चतुर्वेदी ने यह कहा कि मैं हितेश की खाट खड़ी कर दूंगा तो वहां उपस्थित स्वर्गीय प्रकाश जैन ने कहा कि इसने तो अभी खाट बिछायी ही नहीं है. प्रकाश जैन ने 'लहर' में मेरी कविता और समीक्षा प्रकाशित नहीं की. 'पहल' के संपादक ज्ञानरंजन को मैं जब तब कविताएं भेजता रहा. वे लंबे-लंबे ख़त लिखकर मेरी रचनाएं लौटाते रहे. जनवादी लेखक संघ की मुख पत्रिका ने भी एक बार यही किया. 'कथन' के संपादक रमेश उपाध्याय ने मेरी कविताएं लौटायीं और मुझे अपना काव्य संकलन समीक्षार्थ न भेजने का अनुरोध किया. 'कृति ओर' के संपादक वरिष्ठ कवि विजेंद्र ने मुझे कभी प्रकाशित नहीं किया. यहां तक कि मुझे एक विषय देकर कविता लिखवायी और उसे भी प्रकाशित नहीं किया. जिन पत्रिकाओं ने मुझे प्रकाशित किया उनके नाम गिनाने लगूं तो पूरा एक पृष्ठ भर जायेगा. मैं यह धत् कर्म नहीं करूंगा. नंदकिशोर आचार्य ने एक बार मेरा फ़्लैप न लिखने के कारणों से दो पृष्ठ भर दिये.

मैं नहीं जानता साहित्य में मेरा नाम बचेगा या नहीं, लेकिन लगभग आधी सदी से मैं साहित्य के द्वार पर अनवरत दस्तक दे रहा हूं. सियाराम शरण गुप्त ने एक जगह लिखा है कि हज़ारों वर्षों में कोई एक कवि पैदा होता है, शेष उसके लिए रास्ता बनाते हैं. मुझे कवि होने का कोई मुगालता नहीं है. मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मुझे कम से कम भ्रष्ट राजनीतिज्ञों द्वारा निर्मित सड़क का पत्थर हर्गिज़ मत बनाना, बनाना ही हो तो किसी पगडंडी का पैर में न चुभने वाला सपाट कंकर बनाना. आमीन! ❖❖❖

ग़ज़ल

✍ सच्चिदानंद 'इंसान'

शहर का रंग-बदला-बदला है ।
चल गया चाल कोई लगता है ।।
जाने गुम-सुम खड़ा वह कबसे है ।
किन ख़्यालों में उलझा-उलझा है ।।
मातमी चेहरा लिये चुप-चुप है ।
जैसे मातम ही उसका गहना है ।।
मैंने सोचा कि पूछ लूं उससे ।
ज़ख़्म-गर है तो कितना गहरा है ।।
मोम-शीशे का हो सनम जैसे ।
दर्दों-ग़म का लिबास पहना है ।।
पूछ इंसान बेज़बां-बुत से ।
किसका वह इंतज़ार करता है ।।

सहारा मिशन स्कूल, मंदीचक, भागलपुर-८१२००१

'प्रत्यावर्तन' का शेष भाग

इस रविवार को तुम दोनों को हमारे घर आना है. याद रखना,'' कहते हुए मैंने अपना पता लिखकर शिवानी के हाथ में थमा दिया और फ़्लैट से बाहर आ गयी.

□

समय कितनी तेज़ी से बीतता है कई बार मालूम ही नहीं पड़ता. ऐसा लगता है मानो समय के पंख लग गये हों. शिवानी का मुंबई आना हम दोनों के लिए किसी वरदान से कम नहीं था. ढलती उम्र को मानो एक अर्थ मिल गया हो. कभी मैं उसके घर जाती और कभी वह मेरे घर आ जाती और महीने साल गुज़रते जाते. बंगलूर से मुंबई आये शिवानी को सत्तरह-अठारह साल हो गये थे.

ऐसे ही एक दिन मैं शिवानी के घर पहुंची. नाच वाले बच्चे अभी आये नहीं थे. उसकी नृत्य की क्लास शुरू होने में कुछ समय बाक़ी था. हम लोग चाय पी रहे थे. तभी किसी ने कालबेल बजायी. शिवानी ने उठकर दरवाज़ा खोला. सामने एक गोरा-चिट्टा गबरू विदेशी जवान खड़ा था.

''आर यू शिवानी ग्रैनी?''

''यस, आई एम शिवानी, बट हू यू आर?''

उस लड़के ने झुककर फ़ौरन शिवानी के पैर झुये.

''आई एम.... मैं एलेक्स... आपका ग्रेंडसन. पहले मैं बेंगलूर गया. वहां से पता लगाकर, ढूंढ़ता हुआ आया हूं. मैंने भारत के बारे में बहुत कुछ जाना-समझा है. हिंदी सीखी.... और भी बहुत कुछ. अब आपके और दादा जी के साथ रहूंगा और यहीं भारत में नौकरी करूंगा.''

✍ **बी-७९, रिजर्व बैंक अधिकारी आवास, मराठा मंदिर मार्ग, मुंबई सेंट्रल, मुंबई-४०००००८.मो. ९९६९३७५८५१**

लघुकथाएं

✍ आलोक कुमार सातपुते

'टैलेंट हंट'

उस देश के राजा को टी. वी. देखने का बड़ा ही शौक़ था. एक दिन उसे सूझा कि टैलेंट-हंट कार्यक्रम के माध्यम से प्रधानमंत्री एवं अन्य मंत्रिगणों तथा दरबारियों का चयन किया जाये. इसके लिए टी. वी. चैनलों एवं विज्ञापन एजेंसियों की मदद ली गयी. मंत्रीगणों के चयन के लिए 'लॉफ़्टर चैलेंज' का आयोजन किया गया. क्योंकि यह माना गया कि उन्हें जोकर प्रवृत्ति का होना चाहिए, जो हंसा-हंसा कर लोगों को विभिन्न समस्याओं से दूर रख सकें. प्रधानमंत्री पद के लिए 'कॉमेडी का बाप' नामक कार्यक्रम रखा गया. दरबारियों के चयन के लिए 'मस्ती, म्यूजिक और झूम' नामक कार्यक्रम रखा गया, जो पूरी तरह दरबारी और जैजैवंती राग पर आधारित था, क्योंकि दरबारी होने की पहली शर्त जी-हुजूरी मानी गयी. आई. पी. एल. से प्रेरित होकर राजकर्मचारी बोली लगाकर ख़रीदे गये. सभी पदों पर बाक़ायदा महिलाओं के लिए आरक्षण भी रखा गया और उनके चयन के लिए 'स्मॉर्ट कुमारी' और 'स्मॉर्ट श्रीमती' जैसे कार्यक्रम रखे गये.

इस तरह उस देश के मंत्रि-मंडल का गठन हो गया. अब इन प्रतिभावान लोगों ने यह सोचकर कि हम प्रतिभाशाली लोगों के बीच में इस प्रतिभाविहीन राजा का भला क्या काम है, उन्होंने राजा को हटा दिया., और उस पर महाभियोग लगाकर उसे फांसी दे दी गयी.

सच

''लोग मुझसे कतराते क्यों हैं? क्यों मैं जीवन के हर मोचें पर असफ़ल हूं? क्यों मुझे पग-पग पर धोखा मिलता है? क्यों मेरे चरित्र पर उंगलियां उठायी जाती हैं? क्यों, आख़िर क्यों?'' उसने आइने से पूछा.

''तुम एक निहायत ही अव्यावहारिक क़िस्म के आदमी हो. झूठ बोलते वक़्त तुम्हारा आत्मविश्वास डगमगा जाता है. तुम सभी को अपना समझ लेते हो, और तुममें अभी भी ईमानदारी के कीटाणु विद्यमान हैं, जो तुम्हारे अस्तित्व को खोखला कर रहे हैं. इन सब दुर्गुणों के अलावा तुममें एक अच्छा गुण भी है, और वह है तुम्हारा कटु सत्य को बर्दाश्त न कर पाना. और शायद यही गुण तुम्हें अब तक ज़िंदा रखे हुए है. आइने ने जवाब दिया.

''यू इडियट, अपने आपको बड़ा सत्यवादी समझता है.'' कहकर उसने आइने को उठाकर बाहर फेंक दिया

✍ **एल आई जी -८३२, सेक्टर-५, हॉऊसिंग बोर्ड कॉलोनी, रायपुर-४९२००७. मो. ९८२७४०६५७५**

सागर-सीपी

'हिंदी ग़ज़लों में भारतीय संस्कृति और संस्कारों की छाप है!'

✍ आर. पी. शर्मा 'महर्षि'

(ग़ज़ल के बादशाह श्री आर. पी. शर्मा महर्षि से सुश्री मधु अरोड़ा की 'कथाबिंब' के लिए बातचीत)

● ग़ज़ल मूलतः उर्दू की विधा है. हिंदी में जब ग़ज़ल कही जाने लगी तो इसके मूल स्वरूप में क्या बदलाव आया?

ग़ज़ल को उर्दू अदब की आबरू कहा जाता है. इसकी संरचना दोहे से मिलती-जुलती है. यह मूलतः बहर, क़ाफ़िया-रदीफ़ पर आधारित है, जिसे उर्दू में ज़मीने-शेर कहा जाता है. हिंदी में जब ग़ज़लें कही जाने लगीं तो उसके मूल स्वरूप, विशेषकर बाह्य स्वरूप (फॉर्म) में कोई बदलाव नहीं आया. दुष्यंत कुमार से पूर्व ही ग़ज़लें इसी फॉर्म में कही जाती रही हैं. प्रारंभ में मतला, बीच में कुछ शेर और अंत में मक़्ता. पर, हिंदी ग़ज़लों में मक़्ता, जिसमें उपनाम रहता है, उसे ग़ैर-ज़रूरी समझा गया. कथ्य एवं विषय-वस्तु में अवश्य ही बदलाव आया है. प्रेमपरक विषयों की जगह सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विषयों को ग़ज़लों का विषय बनाया जाने लगा है. एक और बात, उर्दू ग़ज़लों पर अरबी-फ़ारसी की और हिंदी ग़ज़लों पर भारतीय संस्कृति और संस्कारों की छाप स्पष्ट दिखायी देती है. ख़ुशी की बात है कि अब यह अंतर कम होता जा रहा है.

● आप ग़ज़ल से कैसे जुड़े?

मैं उर्दू माध्यम से पढ़ा हुआ हूं. उर्दू विषय की हमारी पाठ्यपुस्तकों में महान शायरों की ग़ज़लें शामिल थीं. मात्र दो पंक्तियों में कथ्य और शिल्प का अद्भुत मिश्रण इतना आकर्षक लगता था कि दिल की गहराइयों में उतर जाता था. 'आंख लगती है तो कहते हैं कि नींद नहीं आती है/आंख अपनी जो लगी चैन नहीं ख़्वाब नहीं' जैसे शेर पढ़ने को मिलते थे. फ़िल्मों के माध्यम से ग़ज़लों का सरूर भी सिर चढ़ कर बोलता था. ऐसे में ग़ज़लों के प्रति आकर्षण में बंधना स्वाभाविक बात थी.

● आपके उस्ताद कौन थे?

मैं प्रख्यात अरूज़ी और उस्ताद शायर ओमप्रकाश अग्रवाल 'ज़ार-अल्लामी' का शिष्य रहा हूं. उनका घराना दादा मरहूम अल्लाम सिंह इश्काबादी (भगवानस्वरूप भटनागर) का प्रख्यात अरूज़ी घराना था. उन्होंने अपने जीवन-काल में ही मुझे और साथ ही दो अन्य लोगों डॉ.सत्यप्रकाश शर्मा 'तफ़ता' (कुरुक्षेत्र) और प्रो. इराक़ रज़ा जैदी को अपना जांनशीन यानी उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था.

● आप ग़ज़ल की दुनिया के बादशाह माने जाते हैं. आपके कई शागिर्द रहे हैं, आपको कैसा लगता है?

अपने लिए यह खिताब मैं पहली बार सुन रहा हूं. सच तो यह है कि सीखने की प्रक्रिया के दौरान मैंने जो कुछ भी ज्ञान अर्जित किया उसे अभिलाषी जनों के साथ साझा करने का काम किया है. मैंने यह महसूस किया कि हिंदी में ग़ज़ल लिखने वालों को, विशेषकर ग़ज़ल के शिल्प के संबंध में काफ़ी कठिनाई महसूस होती है क्योंकि इससे संबंधित मालूमात उर्दू में ही उपलब्ध थी. इस कठिनाई को दूर करने में मैं कुछ सहयोग दे सका, यह मेरे लिए संतोष की बात है.

● आपने ग़ज़ल विधा पर बहुत काम किया है. उर्दू के ग़ज़ल के मुहावरों को हिंदी में लिया है, इसकी प्रेरणा कहां से मिली?

७ मार्च १९२२, गोंडा (उ. प्र.)

प्रकाशन - 'हिंदी ग़ज़ल संरचना - एक परिचय' : *१९८४ में उर्दू छंद शास्त्र (अरुज़) का सर्वप्रथम हिंदी में मौलिक रूपांतरण;* ग़ज़ल निर्देशिका; ग़ज़ल विधा; ग़ज़ल और ग़ज़ल की तकनीक; व्यावहारिक छंद शास्त्र; नागफनियों ने सजाई महफ़िलें (ग़ज़ल-संग्रह).
काव्य शोध संस्थान, दिल्ली द्वारा पिंगलाचार्य उपाधि से अलंकृत.

संप्रति - सेवानिवृत्त

श्रीराम निवास, फ़्लैट नं. ४०२, प्लॉट नं. ११-ए, टट्टा निवासी को-ऑप. हॉ. सोसायटी, पेस्टम सागर, रोड नं. ३, चेंबूर, मुंबई-४०००८९. मो. ९३२१५४५१७९

मैंने यह महसूस किया कि छंद और बहर के ज्ञान के अभाव के कारण अधिकांश हिंदी ग़ज़लों में लय का निर्वाह ठीक से नहीं हो पा रहा था. यह बहुत ज़रूरी था कि बहर विज्ञान को हिंदी ग़ज़लकारों तक उनकी अपनी भाषा में पहुंचाया जाये. इसीलिए मैंने वर्ष १९८४ में मौलिक प्रयास के तौर पर पहली बार इल्मे-अरुज़ का हिंदी रूपांतरण 'हिंदी ग़ज़ल संरचना - एक परिचय' पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया. इसमें सुविधा की दृष्टि से बहरों को हिंदी नाम दिये और उर्दू रुक्नों यानी गणों को हिंदी में रूपांतरित किया. इस प्रकार के संदर्भ ग्रंथ के सर्वथा अभाव के कारण ग़ज़लकारों ने इसे हाथों-हाथ लिया और मुझे अपना प्रयोजन सिद्ध होता लगा. इससे प्रोत्साहित होकर मेरी अन्य पुस्तकों अर्थात् ग़ज़ल विधा, ग़ज़ल निर्देशिका, ग़ज़ल लेखन कला, व्यावहारिक छंद-शास्त्र, ग़ज़ल सृजन तथा मेरी नज़र में जैसी पुस्तकों ने आकार ग्रहण किया. ग़ज़लें कथ्य और शिल्प के संबंध में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशित आलेखों के जरिये भी यह जानकारी अभिलाषी जनों तक पहुंचाने में सफलता मिली है. बस, एक धुन सवार रही है कि इल्मे-अरूज़ का जो भी ज्ञान मैंने अपने गुरू से प्राप्त किया है, उसे उन सभी ग़ज़लकारों तक पहुंचाऊं जो अच्छी और सही छंदोबद्ध ग़ज़लें कहना चाहते हैं, पर इसके अभाव में निरुपाय महसूस करते हैं. यही बात मुझे हमेशा प्रेरित करती रही है.

● अगर ग़ज़ल का कथ्य प्रभावी है तो शिल्प पर अधिक ध्यान देने की ज़रूरत नहीं है, क्या आप इससे सहमत हैं?

ग़ज़ल में कथ्य और शिल्प दोनों का ही समान महत्व है. ग़ज़लकारों से इन दोनों में ही समान रूप से दक्षता अपेक्षित है. कथ्य की तीक्ष्णता पर शिल्प की बलि नहीं दी जा सकती, विशेषकर छंद अथवा बहर की, जिनकी अनिवार्यता ग़ज़ल की गेयता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए बेहद ज़रूरी है.

● उर्दू में पुराने ज़माने की गुरू-शिष्य परंपरा आज भी बनी हुई है. हिंदी में इस तरह का वातावरण नज़र नहीं आता, इसकी कोई ख़ास वजह?

उर्दू में स्थापित और नामी ग़ज़लकार भी अपनी ग़ज़लों पर अपने उस्तादों से इस्लाह लेते हैं और इससे उनकी ग़ज़लों में निश्चित तौर से निखार आता है. जब ग़ज़ल एक अच्छे उस्ताद शायर की नज़र से गुज़रती है तो उसकी नोक-पलक संवर जाती है. हिंदी में यह परंपरा नहीं है. संभवतः इसका कारण हिंदी में ऐसे उस्तादों के अभाव के साथ-साथ इस संबंध में जागरूकता का अभाव भी है. अब धीरे-धीरे लोगों को इस्लाह का महत्व समझ में आने लगा है और वे जानकार लोगों को तलाशने लगे हैं.

● अपने शागिर्दों के नाम बताना चाहेंगे?

बहुत से ऐसे स्थापित ग़ज़लकार हैं, जो बहरों/छंदों की दृष्टि से अपनी ग़ज़लों को परिपूर्ण बनाने के

आर.पी.शर्मा 'महर्षि' की ग़ज़लें

१.

ज़हर फैलाने को फन मारे बहुत,
नफ़रतों के नाग फुफकारे बहुत.
सच तो सोना था वो निखरा और भी,
झूठ ने बरसाये अंगारे बहुत.
जानिबे-मंज़िल बढ़े हैं हौसले,
उठके तूफ़ां यूं तो हुंकारे बहुत.
सुनते आये हैं जो सुख का नाम ही,
ऐसे दुनिया में हैं दुखियारे बहुत.
ये जो उजियारे हैं वो हैं प्रेम के,
वरना जीवन में हैं अंधियारे बहुत.
क्यों न 'महर्षि' उसको कजरी नाम दें,
हैं ग़ज़ल के नैन कजरारे बहुत.

२.

जो लिखा उसने मिट गया होगा,
हश्र अश्कों ने ये किया होगा.
आंसुओं से लिखी इबारत को,
पढ़ने वाला भी रो दिया होगा.
उसको नामा मेरा मिला ही नहीं,
नामावर का किया-धरा होगा.
जाने वाले की उस निशानी को,
देख कर कोई जी रहा होगा.
ज़ब्ते-ग़म के जुनूं में 'महर्षि',
आंसू अपने वो पी गया होगा.

३.

दिन सुहाना हो सुहानी रात हो,
यूं न बिगड़ी सूरते-हालात हो.
आग फैली जग में बैजूबाबरा,
राग छेड़ो मेघ का, बरसात हो.
ये मुखौटों पर मुखौटे किसलिए,
अच्छे-ख़ासे आदमी की जात हो.
ओढ़ ली है तुमने क्यों काली घटा,
तुम हो पूनम, जगमगाती रात हो.
ख़ूब उनकी धम-धमाधम हो चुकी,
अब तो 'महर्षि' भांगड़ा की बात हो.

४.

ख़ूब क़समों से सजे उनके वचन,
और वो क़समें भी कैसी आदतन.
कर लिया है बेवफ़ा दीवार ने,
एक दूजे ही कैलेंडर का चयन.
बर्फ़ जैसे सर्द लफ्ज़ों में कहां,
कांगड़ी जैसी वो मीठी-सी तपन.
उन निकटताओं का कोई क्या करे,
जब किसी के मन से जुड़ पाये न मन.
आईना तो सच दिखाता है फ़क़त,
ख़ार भी आयें नज़र कैसे सुमन.
इस तरह भी दर्दे-दिल की बात कर,
जैसे 'महर्षि' कोई मीरा का भजन.

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें. - संपादक

लिए पत्राचार से, फ़ोन से तथा व्यक्तिशः अपनी जिज्ञासाओं के समाधान के लिए मुझसे संपर्क करते रहते हैं. शागिर्दों के रूप में उनका नाम लेना मुझे उचित नहीं लगता. बहुत से नवोदित ग़ज़लकार मेरे संपर्क में रहे हैं और हैं जिन्होंने निष्ठापूर्वक बहर विज्ञान को सीखा है और अपनी ग़ज़लें इस्लाह के लिए नियमित तौर पर प्रेषित करते रहते हैं. सभी के नाम लेना एक लंबी सूची की मांग करता है. इनमें से अब कई नाम हिंदी ग़ज़ल के क्षेत्र में जाने-पहचाने हो गये हैं, जिनमें चांद शेरी, देवी नागरानी, अब्दुल सत्तार नदीम, कृष्णा कुमारी, वेदप्रकाश 'परकाश', सूर्यगिरी शास्त्री, अरुण तिवारी 'अनजान', दिनेश मालवीय, इंद्रजीत सिंह बादल, डॉ. लोक सेतिया, रवींद्र प्रकाश 'हंस' आदि शामिल हैं.

● आपके कई शागिर्द आजकल अच्छी ग़ज़लें कह रहे हैं, यह देख कर आपको कैसा लगता है?

मेरे लिए इससे ज़्यादा ख़ुशी की और क्या बात हो सकती है.

● इतने उम्रदराज़ हो जाने पर भी आप सक्रिय हैं, इतनी ऊर्जा आप कहां से पाते हैं?

यह ऊर्जा अपने उद्देश्य के प्रति समर्पित होने से तो मिलती ही है, इस बात से भी मिलती है कि मैं जिस काम से संलग्न हूं, उससे लोग लाभान्वित हो रहे हैं. इस क्रम में उनसे मिलने वाला स्नेह और सराहना मेरे लिए बहुत बड़ा अभिप्रेरक है. अब आपको बताऊं, ग़ज़ल के कथ्य और शिल्प विषयों से संबंधित कई पीएच.डी. थीसिस में शोधकर्ताओं को सहयोग देने, वरिष्ठ ग़ज़लकारों से सराहना के दो शब्द मिलने और प्रशंसकों द्वारा 'महर्षि गुंजार समिति' जैसे मंच स्थापित करने से काम करने की अभिप्रेरणा के साथ-साथ अकूत ऊर्जा भी मिलती है.

● आजकल आप क्या कर रहे हैं?

आजकल भी मैं अरुज़ और ग़ज़ल पर लिखने में व्यस्त हूं. इस्लाह देने, ग़ज़ल संबंधी पुस्तकों की समीक्षा करने, भूमिकाएं लिखने का काम भी मुझे व्यस्त रखता है.

● आपके पाठक आपकी पसंद के कुछ शेर पढ़ना चाहेंगे, उन्हें ख़ुशी होगी कि आप उनकी यह इच्छा पूरी करें.

काम बहुत मुश्किल है. एक रचनाकार को अपनी सभी रचनाएं पसंद होती हैं. फिर भी, अपनी ग़ज़लों के जो कुछ शेर याद आ रहे हैं, वे हैं–

लब कि ढूंढा किये क़ाफ़िये ही मगर,
अश्क आये तो पूरी ग़ज़ल कह गये.

ख़ैरख़्वाह ज़माने ने तय किया आख़िर,
नमक ही ठीक रहेगा जले-कटे के लिए.

वो मुझसे फ़ासला रखता है इस क़दर 'महर्षि',
कि छू सके न मेरा साया उसकी परछाई.

इरादा वही जो अटल बन गया है,
जहां ईंट रक्खी महल बन गया है.

ख़ुशी को हम ख़ुशामद से बुलाते हैं, नहीं आती,
चले आये जो ख़ुद मेहमान बन कर वो तो ग़म होंगे.

तुम ठहरने को जो कहते तो ठहर जाते हम,
हम तो जाने को उठे ही थे न जाने की तरह.

पलकों पे कोई दीप जलाये तो किस तरह,
आंसू बचे थे जो दिले-नाकाम पी गया.

● नवोदित ग़ज़लकारों को क्या सलाह देना चाहेंगे आप?

उन्हें ग़ज़ल की बारीकियां सीखने की ज़रूरत है. इसके अलावा, यदि ग़ज़ल बहर में हो तो तक़्ती और यदि छंद में हो तो मात्रा-गणना करनी चाहिए. ग़ज़लें पढ़ने या प्रकाशित कराने से पूर्व उन्हें किसी ग़ज़ल-पारखी को दिखा लिया जाये तो ग़ज़ल और ग़ज़लकार दोनों के हित में होगा.

❖❖❖

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमे आपके पत्रों का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक

बाइस्कोप

'इतनी शक्ति हमें देना दाता' के स्वयिता गीतकार - अभिलाष

(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं. अगले अंकों में पढ़िए कमलेश पांडे, जलीस शरवानी व अज़ीम मलिक आदि के बारे में.)

✍ सविता बजाज

आज से क़रीब चालीस साल पहले जब मैं कला के क्षेत्र से जुड़ी तो मौसम बड़े सुहाने होते थे. चारों तरफ कला के फूलों की ख़ुशबू फैली होती थी. संगीत, नृत्य, नाटक, रेडियो, अभिनय लेखन मेरे साथ-साथ जवान हुए. मैं सुंदर थी, जवान थी, स्टेज़ पर मीना कपूर (अनिल बिस्वास की पत्नी) जैसी बड़ी-बड़ी हस्तियों के साथ गाना गाती. हबीब़ तनवीर के नाटक 'आगरा बाज़ार' में कोठे वाली बनती, 'ऐहो हमारा जीवना' में ओम पुरी के निर्देशन में राज बब्बर के साथ अपने अभिनय के गुर दिखाती तो दर्शक, दांतों तले उंगली दबाते. कई बार मनचले दिवाने मुझे किडनैप करने के बहाने ढूंढ़ते रहे लेकिन मैं किसी के हाथ न आयी. मां ने मेरा घर से निकलना बंद कर दिया लेकिन मेरी कला को कोई बांध नहीं सका और वह समय के साथ बंबई में विकसित होने लगी.

मेरा एक पुरुष मित्र जो निर्देशक था उसने मेरा परिचय अपने एक ख़ास दोस्त अभिलाष से कराया जो गीतकार था और नाम और काम पाने के लिए दिन रात मेहनत कर रहा था. अभिलाष चाहता था कि मेरी दोस्ती उस निर्देशक से बनी रहे लेकिन बंबई जैसी माया नगरी में दोस्ती और प्रेम एकदम एक-तरफ़ा चीज़ है और भगवान इंसा की क़िस्मत उसके कर्मों की स्याही से लिखता है. और अगर क़िस्मत में ही खोट है तो दुनियां वालों को दोष देने से क्या फ़ायदा. मैं उस पुरुष मित्र से दोस्ती नहीं निभा पायी. बहुत मुश्किल है यह बेमेल दोस्ती. वह बेचारा निर्देशक समय से पहले भगवान को प्यारा हो गया और मैं अभिलाष से किया वादा नहीं निभा पायी.

आज चालीस साल बाद हम दोनों समुद्र किनारे बैठे एक दूसरे की बखिया उधेड़ रहे थे. घटनाएं तो जीवन में घटती रहती हैं, उन पर वश नहीं किसी का. हां, मेरे जीवन की डोर ज़रूर लंबी हो चुकी है. अभिलाष स्नेह भरी चपत मेरे सर पर लगा बोला, – सविता कैसी हो? तो मैं बोली – अभिलाष, मैं किसी माली की संकरी क्यारी का छोटा सा पौधा बनना बुरा नहीं समझती, किंतु किसी की मुट्ठी में गुच्छे का कोई सुगंधित फूल नहीं बनना चाहा. अभिलाष मेरी बात समझ ख़ामोश हो गया तो बोली – चलो आज चालीस साल बाद अपनी दास्तां सुना ही डालो.

वह बोला – मैं क़रीब बीस-बाइस साल की उम्र में दिल्ली से यहां बंबई नाम काम और पैसा कमाने आया. बचपन से पढ़ने-लिखने का शौक़ था. साहिर लुधयानवी जब भी दिल्ली आते मैं उनसे मिलता था. बंबई आने पर सात बंगला में, जहां वह भाड़े पर रहते थे, ज़रूर मिलने जाता. उनकी अम्मी अक्सर मुझे आमलेट खिलातीं. साहिर साहब कहते – किसी के ख़्याल की बेहूदा नक़ल मत करो. पढ़ो ज़्यादा, लिखो कम.

बंबई में तो स्ट्रगल का अंत ही नहीं. दिन भर फ़िल्म वालों के दफ़्तरों के चक्कर काटता और रात, भाडुंप की एक मिल में नौकरी करता. सबसे पहले

४० स्वर्णिम वर्षों से चलचित्र व टी. वी. से संबद्ध. प्रथम गीत लता मंगेशकर जी द्वारा गाना जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि. तदोपरांत सभी बंद दरवाज़े स्वयं खुलने लगे.

बी-१८, गुलशन, फ़्लैट नं. २०३, गोकुलधाम, गोरेगांव (पू.)-४०००६३
मो. ९८७०२२८७५७

सलिल चौधरी जी के संगीत में काम करने का अवसर मिला. मेरा गाना था और सलिल दा का म्यूज़िक व आवाज़ मन्ना डे की थी और फ़िल्म एक डाक्यूमेंट्री थी. काम मिलना तो शुरू हो गया था, गानों के साथ संवाद भी लिखता गया. वह ज़माना दूरदर्शन और एच.एम.वी. का था. कई बार स्टूडियो में मेरा गाना न गवाकर किसी दूसरे राइटर का गाना लिया गया लेकिन मैंने हिम्मत नहीं हारी. ख़ुद ही अपने ज़ख्मों पर सेक करता और ख़ुद ही मल्हम लगाता. कई बार घोस्ट राइटिंग भी की. फ़िल्म 'सावन को आने दो' के सब अधूरे गाने मैंने पूरे किये. नाम तो नहीं मिला. हां, जितने पैसे मिले उन अधूरे गानों के रचयिता की विधवा को दे दिये.

स. - आपका नाम तो ओम प्रकाश था न, अभिलाष कैसे हो गया?

इसकी अच्छी कहानी है. १९७० में 'सांझ भयी घर आजा' और 'आज की रात न जा' जैसे बहुत से मुखड़े लिखे जिन्हें संगीत निर्देशक महावीर जी ने लता जी की आवाज़ में एच.एम.वी.के लिए रिकॉर्ड करना था. उन्होंने मुझे लता जी के पास मुखड़े सुनाने को भेजा तो लता जी ने मुखड़े सुनकर कहा – जो भी आपको पसंद हो, गा दूंगी. महावीर जी ने उसी रिकॉर्डिंग में मेरा नाम अभिलाष रख दिया और एच. एम. वी. रिकॉर्डों पर अभिलाष नाम की धूम मच गयी.

'अंकुश' फ़िल्म का गाना - 'इतनी शक्ति हमें देना दाता...' ने मेरे लिए सब बंद दरवाज़े खोल दिये. दूरदर्शन के लिए पचासों सीरियल लिखे जैसे 'अदालत', 'संसार', 'आईना', 'अपराध' वग़ैरह. लेखन का शायद ही कोई क्षेत्र हो जो मैंने छोड़ा हो.

स. - अभिलाष ने जो चाहा था पा लिया. लेकिन अभी तक आप इस क्षेत्र में कैसे टिके हुए हैं. क्योंकि नयी पौध, लहरा रही है न यहां. रीमिक्स मार-धाड़ वाले गाने, कान फोड़ू संगीत. आपको कैसे काम मिल रहा है.

अभिलाष ज़ोर से हंसा फिर बोला – सविता क़रीब १२०० से ज़्यादा गाने रिकॉर्ड हैं मेरे, ६०० स्कूलों में 'इतनी शक्ति वाला गाना स्कूल की प्रार्थना में बजता है, या बच्चे गाते हैं. डेढ़ करोड़ मोबाइलों पर इसी गाने की रिंग टोन बजती है. बहुत अच्छा लगता है. जो चाहा सब पा लिया. कई साथी छूट गये. लेकिन चालीस साल के लंबे सफर में चार दोस्त भी ऐसे नहीं जिन्हें अपना कह सकूं. पुराने रिलेशन्स की वजह से काम मिलता रहता है. सुख में बहुत दोस्त बनते हैं. सब लूटते है आपको. हां, पहले किराये के घर में रहता था, पत्नी ने अपना गहना बेचकर सहयोग दिया तो घर भी बन गया. बहुत लोगों से पैसे लेने हैं, देते ही नहीं. कभी-कभी सोच कर दुःख होता है कि जब मेरी मां गुज़री तो किसी फ़िल्म वाले ने मदद नहीं की.

अभिलाष की आंखों में दुःख ही दुःख था, आंखें गीली थीं. अब मैं अभिलाष को कैसे समझाती कि जीवन इसी का नाम है. समस्याएं भी आती-जाती रहती हैं. किंतु वह दूसरों के स्वार्थों और रुचि-अरुचि के द्वारा कभी-कभी सजीव होकर जीवन के साथ लड़ने के लिए कमर कसे हुए दिखाई पड़ता है. मैं भी तो इस ढलती उम्र में भी अकेली अपना बोझ ख़ुद के कंधों पर लादे ज़िंदगी से लड़ रही हूं. सांस की डोर अभिनय और लेखन जैसे सशक्त माध्यम से आज तक जुड़ी है. कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है प्यारे!

पो. बॉक्स-१९७४३, जयराज नगर, बोरिवली (प.), फ़ोन : ९२२३२०६३५६

जीवन के अंदर झांकने का झरोखा

✍ संतोष श्रीवास्तव

थिएटर ऑफ रेलेवेंस : मंजुल भारद्वाज
प्रकाशक : दि एक्सपेरिमेंटल थिएटर फाउंडेशन.
मू. २००/- रु.

बात १९७६ की है. आवाज़ की दुनिया के जाने-माने कलाकार एवं थिएटर से जुड़े स्व. विजय वर्मा के जबलपुर के शहीद स्मारक भवन में खेले गये नाटक 'मैन विदाउट शैडोज़' ने उन दिनों खेले जानेवाले नाटकों के शो के सभी रिकॉर्ड तोड़ दिये थे. उनका सपना था – थिएटर ऐसा हो, जिसमें कलाकार, संवाद, नाटक, मंच सज्जा, लाइट इफेक्ट्स आदि का ख़ुद और केवल ख़ुद रचयिता हो. लेकिन वे अपने इस स्वप्न को संग लिये ४८ वर्ष की अल्पायु में दुनिया से चले गये. जब मैं मंजुल भारद्वाज से मिली, तो इस निहायत अपने से व्यक्तित्व में मुझे वे सारी संभावनाएं नज़र आयीं, जो विजय वर्मा का स्वप्न था. आज मंजुल की क़िताब 'थिएटर ऑफ रेलेवेंस' मेरे हाथ में है. इसे मैंने पूरी रात जागकर पूरा पढ़ डाला और पाया कि मंजुल अपने-आप में एक थिएटर हैं. जिसका नतीजा है 'थिएटर ऑफ रेलेवेंस'. इस पुस्तक को प्रसिद्ध लेखक संजीव निगम ने संपादित किया है, जो स्वयं नाट्य लेखन की ओर सक्रिय हैं.

१२ अध्याय और पांच परिशिष्टों वाली यह क़िताब मानव जीवन के कोने-कोने में पड़ताल करती उन अवस्थाओं से गुज़रती है, जहां भावनाएं हैं, संवेदनाएं हैं, परिकल्पनाएं हैं और रोज़मर्रा के जीवन से जुड़े चर्चे हैं. हिंदी रंगमंच 'दशा और दिशा मेरी नज़र में' लेख में लेखक ने ज़मीन को चुन लिया है, जहां वे थिएटर को अपने जीवन का मक़सद बना दृढ़ता से खड़े हो सकें. वे इस बात की छानबीन करते हैं और उन कारणों को खोजते हैं, जिनकी वजह से थिएटर आजीविका का साधन नहीं बन पाता.

'थिएटर ऑफ रेलेवेंस का सूत्रपात' अध्याय में उन्होंने अपने अभिनय पक्ष की ओर पाठकों का ध्यान केंद्रित किया है. शेक्सपीयर के नाटक हैमलेट का फ्लॉप शो, किराये के घर की बालकनी में नाटक के सेट का बारिश में गलना और इसके साथ ही मंजुल के मन में उठे तूफ़ान के बावजूद मन की उस गीली-गीली सी उस मिट्टी में 'थिएटर ऑफ रेलेवेंस' का बीज अंकुरित होना. जिसकी शाखा-प्रशाखाओं में संकल्पना, दर्शन, परिदृश्य, सोच, रंगविधान और नाटय के डाल-पात होंगे. अध्याय ५ एवं ६ में इस नाट्यवृक्ष के सिद्धांतों की चर्चा और प्रतिस्थापनाओं का ख़ाका खींचा है, जो उनकी अनुभूतियों और अभिव्यक्तियों का अहसास कराता है. रंगकर्म की यह खोज उस ऊंचाई पर पहुंचने के लिए दृढ़संकल्प नज़र आती है. जहां सांस्कृतिक धरोहर का रूप होगा रंगकर्म... जहां संवाद संवाद नहीं रह जायेंगे सिंफनी बन जायेंगे और दर्शक जीने लगेगा नाट्यमंच, नाट्य अभिनय. मंजुल का यह ट्रीटमेंट मानो सदी का मुकाम बन गया है. हालांकि वे हर दृष्टि से यह बताना चाहते हैं कि 'थिएटर ऑफ रेलेवेंस' के अनुसार थिएटर क्या है? मंजुल उसे अनुभव मानते हैं, जिनके मौलिक पहलू हैं टाइम और स्पेस. वे दर्शक को पहला रंगकर्मी मानते हैं, उसके बाद लेखक, निर्देशक और अभिनेता हैं. उन्होंने दर्शक को अद्भुत तरीके से महत्व दिया है और यह मान लेना रंग आंदोलन की पहली सीढ़ी है... तो उन्होंने थिएटर को जन-जन से जोड़कर इस अवधारणा की पुष्टि की है.

अध्याय ८ 'थिएटर ऑफ रेलेवेंस और रंगलेखन' में मंजुल ने नाट्य लेखन के पांच आधारों की खोज की है. इसके लिए उन्होंने विभिन्न फ्रेमों का ड्रॉ बनाकर वंशवृक्ष की तरह अपनी बात पाठकों के समक्ष रखी है. उसे रंग कार्यशाला के लिए बहुत उपयोगी माना जाना चाहिए. मंजुल का मानना कि 'काल का दूसरा नाम है लेखक, नाटक व्यक्ति के लिए नहीं, व्यक्ति केंद्रित नहीं होता, वो पूरे समाज के लिए काल के लिए होता है.'

संजीव निगम के लेख 'मंजुल भारद्वाज का नाट्यलेखन' में उनके लिखे नाटकों की विस्तृत चर्चा करते हुए लेखक की भाषा शैली आदि पर टीका करते हुए लिखा है कि 'मंजुल अपने नाटकों के माध्यम से कई पुरानी परंपराओं को

तोड़ रहे हैं और एक नयी नाट्यशैली को विकसित कर रहे हैं.' यही वजह है कि आज भारत के गांव-कस्बे के वे कलाकार उभरकर आ रहे हैं, जिनकी जीवंत कला समय की परतों में ढकी-मुंदी थी.

निर्देशक (उत्प्रेरक) मंजुल का दिया वह शब्द है जो निर्देशक के सही पक्ष को सामने लाता है. नाटकों में उत्प्रेरक की बेहद महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि वही अभिनय और मंच को एक कड़ी में पिरोता है. 'अभिनेता / अभिनय' में तीन महत्वपूर्ण तत्वों पर बल दिया गया है : अवलोकन, आत्मसात और प्रदर्शन की अभिव्यक्ति. इन तीनों तत्वों की बहुत विस्तार से चर्चा करते हुए मंजुल ने यह सिद्ध किया है कि कलाकार न स्वयं का चरित्र खेलता है, न किसी अन्य का चरित्र खेलता है, बल्कि वह तो अभिनय खेलता है. मानो पूरे नाट्यशास्त्र का बखान कर दिया मंजुल ने, जिसमें दर्शक नाट्यधर्मी शैली का जमकर लुत्फ़ उठाये. अध्याय ११ में 'थिएटर ऑफ रेलेवेंस ने तोड़ी भ्रांतियां' लेख में क्रम से ६ भ्रांतियों का उल्लेख किया गया है. यह प्रस्तुति संजीव निगम की है. वे बताते हैं कि मंजुल थिएटर को सीमाओं में नहीं बांधते बल्कि वह तो एक नदी की तरह है जो अपनी क्षमता से संस्कृति को संभाल कर रख सकता है.

'थिएटर ऑफ रेलेवेंस की यात्रा' में मंजुल उन पड़ावों से गुज़रते हैं जहां अंग्रेज़ी नाटकों के अनुवाद में जीता थिएटर है, दर्शकों का अभाव है, मौलिक नाट्य लेखन है ही नहीं, रंग-प्रस्तुति के लिए उपयुक्त माहौल भी नहीं है... तब मंजुल तय करते हैं कि वे अपने उद्देश्य का दर्शक निर्माण एवं आर्थिक स्वावलंबन, नाट्य मंडलियों का निर्माण और सामुदायिक नाटक का सूत्रपात का विषय बनायेंगे. इटीएफ ने यह प्रमाणित कर दिया कि थिएटर में भी करियर है अगर कड़ी मेहनत हो. प्राकृतिक आपदाओं को झेलनेवाले अंडमान निकोबार द्वीप समूह के सुनामी प्रभावित बच्चों के साथ भी मंजुल ने थिएटर के सकारात्मक प्रभाव को साबित किया. और सुनामी प्रभावित १० गांवों में 'गुदगुदी' प्रोजेक्ट की शुरुआत भी की. जिसने हादसा झेले दिलों पर फाहे का काम किया. मंजुल ने 'रेडलाइट एरिया' की पीड़ा को बटोरकर उनमें आत्मसम्मान से जीने के हौसले को प्रतीकों के सहारे एक खूबसूरत अंदाज़ में प्रेरणा दी, जिसके लिए मंजुल क़ाबिले तारीफ़ हैं और यह सब रंग कार्यशाला के द्वारा.

'प्रबंधन और थिएटर ऑफ रेलेवेंस' में इस बात पर ग़ौर किया गया है कि थिएटर का मैनेजमेंट से क्या रिश्ता है और थिएटर की हमारी ज़िंदगी में क्या अहमियत है. महात्मा गांधी ने 'राजा हरिश्चन्द्र' नाटक देख कर अपने अंदर के सत्य को जाना और पूरे देश को सत्य पर चलने की राह बतायी. नाटक को पंचम वेद कहा गया है. अगर थिएटर को समझना है तो यह लेख इस मुद्दे के सारे सवालों का जवाब है. मंजुल ने रंगकर्म की जो संकल्पना की है इस लेख के द्वारा उसकी विभिन्नन परतें उधड़ती चलती हैं.

परिशिष्ट-१ से लेकर परिशिष्ट ५ तक पुस्तक जितना कुछ कहती चलती है, उस कहन में हिस्सा लिया है राजकुमार कामले ने 'थिएटर ऑफ रेलेवेंस-एक रंगसोच-एक नाट्य पद्धति' लिखकर. यह लेख मंजुल की सोच और उनकी रंगयात्रा पर केंद्रित है, जिसे कामले जी ने बड़ी बारीकी से शब्द दिये हैं. डॉ. रमा रतन के लेख 'ज़िंदगी ख़ूबसूरत है' में उन्होंने उन सारे बच्चों का आभार माना है जो उनके विश्वास - ज़िंदगी ख़ूबसूरत के ऊपर हर बार अपनी मोहर लगाते रहे. अंतिम परिशिष्ट मंजुल भारद्वाज द्वारा लिखा संस्मरण है — 'हमारी पहचान, हमारी भूमिका' जिसमें उन्होंने विभिन्न कार्यशालाओं से जुड़े संस्मरण, नाट्य प्रस्तुतियों का वर्णन किया है. इस ख़ूबसूरत गीत से लेख का अंत... 'मिली है दिल के अरमानों को एक नयी उड़ान है/मिलकर बनाया है, हमने एक नया जहान' है. यह क़िताब यथार्थवादी और प्रयोगधर्मी नाटकों के सिलसिले के बीच मंजुल भारद्वाज के थिएटर के लिए समर्पित ज़िंदगी का एक प्रीतिकर अनुभव सिद्ध हुआ है, जिसमें भाषा अपनी ख़ूबसूरती में स्वयं एक अभिनेत्री है. कथ्य और कहन रंगमंच और नाट्य विषय उसका ट्रीटमेंट. पुस्तक केवल अध्यायों तक ही रहती तो ज्यादा स्पष्टता से अपनी बात रख पाती. बल्कि रखी ही है. परिशिष्ट के २ और ३ अनुच्छेद अनावश्यक लगते हैं. इनके बिना पुस्ताक और प्रभावशाली होती.

२०४, केदार को-ऑप.हॉ.सो., सेक्टर-७, निकट चारकोप बस डिपो, कांदिवली (प.), मुंबई-४०००६७.
मो.:९७६९०२३१८८

स्त्री समाज की ख़ामियों को खटखटाने की ख़ूबसूरत कवायद

✍ डॉ. प्रद्युम्न शल्ला

पनाह (उपन्यास) : **डॉ. मंजु दलाल**
प्रकाशक : राज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.
मू. ५००/- रु.

डॉ. मंजु दलाल के सद्य: प्रकाशित तीसरे उपन्यास 'पनाह' की केंद्र बिंदु व मुख्य पात्रा मैथिली के माध्यम से मंजु दलाल ने स्त्री समाज की उस समस्या का ख़ूबसूरती से निरूपण किया है जिससे आज कमोवेश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष स्त्रियां जूझ रही हैं. भले ही मैथिली को राजेश जैसे मनोरोगी से शादी करनी पड़ती है और इस बारे में उसके व परिवार के साथ धोखा किया जाता है मगर ऐसे भी तो कितने परिवार हैं जहां ये धोखे प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष हैं व इसकी शिकार स्त्रियां जीवनपर्यंत बनती हैं. शादी उपरांत अत्याधिक सकते में व हैरान मैथिली जब इस सत्य से रूबरू होती है तो जहां उसे राजेश के परिवार पर क्रोध आता है वहीं उसे राजेश पर तरस भी आता है क्योंकि वह डॉ. परम से सच्चाई जान लेती है और उसका स्वयं का फिर राजेश को माफ़ कर देने एवं उसके साथ जीवन न गुज़ारने का निर्णय उसे गंधारी व उर्मिला सरीखे स्त्री पात्रों के समकक्ष खड़ा कर देता है. मैथिली का यह कथन कितनी जीवंतता व सत्यता लिये है — ''जब लड़की रूपी नदी को पति रूपी सागर में विलीन होना है तो फिर उसके सपनों का अर्थ ही क्या है? उसकी इच्छा और आकांक्षा क्या? एक अस्तित्वहीन प्राणी के लिए इन चीज़ों का कोई मतलब नहीं है. उसे तो पति की तर्ज पर गरजना और बरसना है, त्याग, समर्पण, प्रेम कुछ ऐसे भाव हैं जिनके होने से रिश्ते मधुर बनते हैं और संसार स्वर्ग, लेकिन इसकी आशा केवल स्त्री से की जाती है.''

सांत्वना और प्यार पाकर किस तरह क्रोध प्रतिशोध की अग्नि से तप्त हृदय भी शीतलता की ठंडी बौछारों को महसूसता है यह भी एक अजीब संयोग है. परिवार से निकलते वक़्त मैथिली का अनुराधा से जो रिश्ता बना उस पर कही गयी मैथिली की यह टिप्पणी कितनी गहरी है — ''कितना विचित्र है जीवन जहां पर रिश्तों की संभावना ही नहीं वहां भी गहरे रिश्ते जोड़ लेता है.''

उपन्यास में एक बात जो बहुत ही महत्वपूर्ण है वह यह कि स्त्री, स्त्री की दुश्मन है मगर स्त्री-स्त्री की दोस्त भी है तथ्य ख़ूबसूरती से उद्घाटित हुआ है. जहां मैथिली को हॉस्टल में लता, घर में नानी, ससुराल में अनुराधा मिलती है वहीं उसे स्वर्ग कहे जाने वाले ससुराल में राजेश जैसा पति, सास जैसी दुश्मन व ससुर सरीखा स्वार्थी इंसान भी मिलता है जिनके लिए औरत का जीवन महत्व नहीं रखता पुत्र मोह के सामने.

पूरे उपन्यास में यद्यपि मैथिली का जीवन दांव पर है मगर इस पर निर्णय लेने की समझ और सहारा उसे पूर्व पीढ़ी यानी नानी से मिलता है. यद्यपि इसके बीज उसके मन में दुश्मन के घर दोस्त बनी अनुराधा द्वारा पहले ही रोप दिये जाते हैं मगर एक बुज़ुर्ग का नयी पीढ़ी को समझना और प्रगतिशील सोच रखना उसे अखिलेश, कुलदीप, वीरेंद्र सिंह आदि सबसे ऊंचा उठा देता है.

उसकी नानी उसका सबसे बड़ा संबल बनती है यद्यपि वह स्वयं भी अपनी सोच में स्पष्ट हो उठती है. नानी का यह कथन कितना यर्थाथपूर्ण व सजग है — ''मैथिली, मैं स्वयं एक स्त्री हूं इसलिए हर स्थिति में मेरा केंद्र तुम ही हो. एक परित्यक्ता स्त्री को समाज में सम्मान नहीं मिलता इसलिए दुख सहकर भी समझौते का मार्ग मैंने तुम्हें दिखाया, मगर जहां तुम्हारा वैवाहिक जीवन एक क़दम भी नहीं चल सकता वहां से तुम्हारा लौट आना ठीक है.''

मैथिली के दुख का कारण जानते ही नानी की तुरंत सहमति इस बात का स्पष्ट संकेत है कि नानी की संवेदना जीवन भर पीड़ा सहकर भी कितनी पारदर्शी व समदर्शी है,

मैथिली के स्त्रीत्व और सुलझी सोच से निकला निर्णय कितना स्पष्ट और सार्थक है. जब चाचा कुलदीप उससे पूछता है कि वह क्या चाहती है — ''मेरे साथ जो बुरा हुआ उस बुरे का अंत, मैं नहीं चाहती कि यह बुराई मेरे साथ और चले, मुझ पर तरस खाओ चाचा जी, मैं जीना चाहती हूं.''

किसी से बदला लेने का अर्थ है स्वयं से बदला लेना, इस प्रकार कभी अन्याय को ख़त्म नहीं किया जा सकता. मैं नहीं चाहती कि मेरे जीवन से खिलवाड़ हो —

मैं अपनी बची हुई ज़िंदगी शांति से गुज़ारना चाहती हूं.''

कुलदीप के उसे बच्ची कहने पर नानी की दूरदर्शी एवं स्पष्ट सोच का संकेत समाज को सयाना करने में सक्षम है. ''बच्ची नहीं है वह कुलदीप, बच्चे तो हम सभी हैं जो इस सब में मैथिली की ज़िंदगी की इमारत ढह जाने की आवाज़ नहीं सुन पा रहे, ठीक कहती है मैथिली, हम उसे और कितनी सजाएं देंगे.''

कुल मिला कर 'पनाह' के माध्यम से लेखिका ने उन सभी स्त्रियों को पनाह देने का सशक्त प्रयास किया है जो दुखों से घबरा कर, अत्याचारों से डर कर जीवन से हार मान बैठती हैं. सभी को अखिलेश भले ही न मिलते हों मगर उससे भी ज़रूरी है स्त्री का अपने भीतर की आवाज़ को सुनकर निर्णय लेने की शक्ति का संचयन. यही इस उपन्यास का मूल व मुख्य स्वर है.

सुंदर, मनोहारी आवरण व मुद्रण संबंधी अशुद्धियां न के बराबर होने पर भी पाठकों की तंग जेब से बाहर है. इसका मूल्य पांच सौ रुपया. यह कहीं खटकता भी है.

✍ **५०८, सेक्टर-२०, शहरी संपदा, कैथल (हरि.)-१३६०२७**

बातें महज़ बातें नहीं हैं

✍ बिपिन कुमार शर्मा

बातें (साक्षात्कार) : **सं. मधु अरोड़ा**
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर-४६६००१
मू. -१५० रु.

कथाकार तेजेंद्र शर्मा की साक्षात्कार की पुस्तक 'बातें' को सही मायने में आलोचना की पुस्तक की तरह देखा जाना चाहिए. संपादिका मधु अरोड़ा ने इस पुस्तक का शीर्षक महज़ 'बातों' तक केंद्रित करके रख दिया है. बहरहाल, यहां तेजेंद्र शर्मा का एक नया ही पक्ष पाठकों के सामने आता है — प्रखर, सुचिंतित और बेबाक आलोचक का पक्ष, इस पुस्तक में तेजेंद्र शर्मा ने कहानी और प्रवासी कहानी पर पर्याप्त विस्तार में और सुसंगत तरीक़े से विचार किया है, साथ ही हिंदी आलोचना की विसंगतियों की ओर भी ध्यान दिलाया है. मोहन राणा से बातचीत के क्रम में तेजेंद्र शर्मा अपनी कहानियों के बारे में टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि — ''मेरे लेखन के केंद्र में आम आदमी के साथ जीवन को महसूस करना है. किंतु वह आम आदमी लंदन का भी हो सकता हैं, जापान का भी और अमरीका का भी. मैंने अपने आपको केवल भारत के मज़दूर और किसानों से नहीं जोड़ रखा है.'' तेजेंद्र जी ने उपर्युक्त टिप्पणी में आम आदमी की अपनी परिभाषा को बहुत साफ़ शब्दों में स्पष्ट कर दिया है. इसी साक्षात्कार में आज के हिंदी साहित्य पर भी टिप्पणी की गयी है— ''हिंदी में शोधपरक लेखन का रिवाज़ ही नहीं है. तथ्य कितने भी बदल जायें, इतिहास, भूगोल चाहे नये रूप धर लें, हम केवल मज़दूर, किसान और व्यवस्था विरोध पर ही लिखते जायेंगे. चाहे आप किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं, या फिर उसकी पत्नी हैं या किसी बैंक के जनरल मैनेजर हैं — लिखेंगे आप मज़दूर, शोषण, सत्ता-विरोध आदि-आदि. ज़्यादा से ज़्यादा हो गया तो नौकरानी पर लिख लिया. पिछले साठ साल के हिंदी साहित्य में क्या समाज में हुए वैज्ञानिक परिवर्तन स्थान पाते हैं?'' बेशक तेजेंद्र शर्मा के ये सवाल बहुत तीखे हैं, मगर सटीक भी तो हैं.

इसी साक्षात्कार में एक और टिप्पणी है जिसे प्रस्तुत करने का मोह संवरण करना कठिन है — ''मैंने तो लंदन में मुहिम चला रखी है कि हमें अपने लेखन को भारत का प्रवासी साहित्य नहीं बनाना है बल्कि हमें इसे ब्रिटेन का हिंदी साहित्य बनाना है. इसके लिए ज़रूरी है कि हम ब्रिटेन में रहते हुए केवल नास्टेलजिया से ग्रस्त न रहें और अपने आस-पास के जीवन को अपने साहित्य में उतारें. मैं जिस हारे हुए व्यक्ति की बात करता हूं वह कभी नहीं बदलता. वह हर युग में होता था, होता है और रहेगा. मेरा हारा हुआ व्यक्ति हिटलर या रावण नहीं है. यदि अमरीका, इराक अथवा अफ़गानिस्तान में हार जाता है तो वह मेरा हारा हुआ व्यक्ति नहीं है. दुर्योधन या दुःशासन मेरे हारे हुए लोग नहीं हैं. जिस हारे हुए आदमी की बात मैं कर रहा हूं वह कमज़ोर आदमी है जिसके साथ अन्याय हो रहा है. जिसे सदियों से दबाया जा रहा है. वह हारा हुआ आदमी भारत में है तो ब्रिटेन में भी है और अमरीका में भी है.''

तेजेंद्र शर्मा के इस विचार से शायद ही किसी को

आपत्ति हो सकती है. अत्यंत प्रभावशाली भाषा और प्रतीकों में उन्होंने अपने ये विचार प्रकट किये हैं. उल्लेखनीय है कि तेजेंद्र जी केवल एक कथाकार के रूप में ही आज महत्वपूर्ण नहीं हैं, वे इस मायने में कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं कि प्रवासी लेखकों की एक पूरी जमात के वे प्रेरणा-स्त्रोत बने हुए हैं.

इस पुस्तक में संकलित अजय नावरिया का साक्षात्कार भी महत्वपूर्ण है. प्रवासी साहित्य की विडंबना को तेजेंद्र शर्मा एक अलग ही कोण से देखते और दिखाते हैं — ''प्रवासी मैं दिल्ली, मुंबई और लंदन तीनों में हूं. यह भेद-भाव विदेश के साथ क्यों? प्रवासी व्यक्ति तो हो सकता है परंतु साहित्य के प्रवासी होने का औचित्य क्या है? जो वेस्टर्न हेमिस्फ़ीयर के प्रवासी हैं वे अपनी मर्ज़ी से विदेश में रहने के लिए गये हैं. यह विस्थापन नहीं है. इसे रोमेंटिसाइज़ नहीं किया जाना चाहिए.'' दरअसल तेजेंद्र शर्मा का यह सवाल अजय नावरिया से नहीं बल्कि हिंदी के महान आलोचकों से है और उन्हें इन सवालों के जवाब देने चाहिए. इन बातों को आगे बढ़ाते हुए वे कालूलाल कुल्मी से भी कहते हैं — ''डायसपोरा के साहित्य को प्रवासी कहकर किसी षडयंत्र के तहत हाशिए पर न डाला जाये. मैं मानता हूं कि प्रवासी लेखक हिंदी साहित्य में एक नये तेवर का साहित्य जोड़ रहे हैं.''

प्रवासी लेखन का समुचित मूल्यांकन न होना निश्चित तौर पर हिंदी आलोचना की असफलता है. आप ब्रजभाषा, अवधी या अपभ्रंश तक को पढ़ने-पढ़ाने के लिए बेचैन हैं लेकिन समकालीन रचनाशीलता की कोई सुध नहीं है. इस पुस्तक में तेजेंद्र शर्मा ने इन प्रश्नों पर ख़ूब विस्तार से जवाब दिया है. वे आज की हिंदी आलोचना पर बात करते हुए अक्सर तल्ख़ हो जाते हैं जो अनपेक्षित भी नहीं है. उनका यह भी कहना सही है कि हमने अपने आलोचक पैदा नहीं किये. वास्तव में समकालीन साहित्य का कोई आलोचक नहीं है जो आज के साहित्य को परख सके और उसके अनुरूप प्रतिमान विकसित कर सके. युवा लेखकों द्वारा लिखी जा रही छुटपुट समीक्षाओं को आलोचना नहीं कहा जा सकता है. युवा आलोचक भी अगर शोध-आलेख लिखने की दिशा में क़दम बढ़ाते हैं तो उन्हें पुराने रचनाकार ही नज़र आते हैं. समकालीन रचनाशीलता को परखने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी देती है. इसकी क़ीमत समकालीन रचनाकारों को उठानी पड़ रही है, दूसरी ओर पाठक भी अपने रचनाकारों से अपरिचित रह जाते हैं. पाठकों के विमुख होने को तेजेंद्र शर्मा एक दूसरे कोण से भी देखते हैं — ''लगभग तीन दशकों से भारत में हिंदी साहित्य केवल दो लोगों को ध्यान में रखकर लिखा जाता है - नामवर सिंह और राजेंद्र यादव. पाठक के बारे में कोई लेखक नहीं सोचता. मुझे लगता है कि शायद इसी कारण से हिंदी साहित्य के पाठक सिरे से ग़ायब हो गये हैं.''

इस पुस्तक में तेजेंद्र शर्मा ने निहायत बेबाकी से हिंदी साहित्य के बहुत सारे ज्वलंत सवालों के जवाब दिये हैं जिनसे आप लाख असहमत हों, लेकिन आपको उन पर दुबारा विचार करने की प्रेरणा ज़रूर मिलेगी. इसमें कई साक्षात्कार उपयोगी हैं. लेकिन सबसे सुदीर्घ और सारगर्भित साक्षात्कार हरि भटनागर का है जो अच्छी तैयारी से लिया गया है.

तेजेंद्र शर्मा ने अपने साक्षात्कारों में एक बात को बार-बार दुहराया है और हर बार वह जवाब बहुत तीक्ष्णता से चुभता है कि वे साहित्य में विचारधारा को कहीं स्थान नहीं देते. विचारधारा उन्हें फूटी आंखों भी नहीं सुहाती और इसके पक्ष में वे तरह-तरह के तर्क जुटाते हैं जिनसे सामान्य पाठक के भ्रमित हो जाने की बहुत गुंजाइश है. वे विचार को स्वीकारते हैं, मगर विचारधारा से पीठ फेर लेते हैं. लेखक विचार-शून्य होकर तो हुआ भी नहीं जा सकता, इसलिए विचार को नकारने की कोई गुंजाइश भी नहीं थी. हालांकि तेजेंद्र जी का साहित्य पढ़ने के बाद उनसे ऐसी धारणा की उम्मीद नहीं की जा सकती है. उनकी कहानियों का नायक बेशक आम आदमी है जो पराजित होकर भी कभी हारता नहीं है. वह हर बार फ़ीनिक्स की तरह उठ खड़ा होता है और लगातार जूझता है. विचार तो हर किसी में होता है लेकिन वह विचार जब किसी दिशा में अग्रसर होता है तो विचारधारा का रूप लेता है. दिशाहीनता भला किस भांति उपयोगी हो सकती है. तेजेंद्र जी का तो नायक दबा हुआ और हारा हुआ व्यक्ति है, उन्हें विचारधारा से बचने की ज़रूरत ही क्या है.

२०९, झेलम, ज. ने. वि. वि.,
नयी दिल्ली-११००६७
मो. ९८६८५६५०६१

"कथाबिंब" की लेखिका व हितैषी डॉ. स्वाति तिवारी की पुस्तक "सवाल आज भी ज़िंदा है" का लोकार्पण

४ दिसंबर २०१२ को भोपाल में आयोजित एक समारोह में इंदौर की ख्यातनाम लेखिका डॉ. स्वाति तिवारी का भोपाल गैस त्रासदी पर केंद्रित पुस्तक "सवाल आज भी ज़िंदा है" का लोकार्पण संपन्न हुआ.

डॉ. स्वाति तिवारी ने कार्यक्रम में पुस्तक के कुछ अंशों का वाचन करते हुए कहा कि यह पुस्तक गैस पीड़ितों के प्रति उनकी शब्दांजलि है. उन्होंने कहा कि भोपाल गैस त्रासदी भूलने की नहीं हर पल याद रखने की घटना है, जिससे फिर कोई भोपाल न घटे और फिर कोई विधवा कॉलोनी न बने. उन्होंने पुस्तक की विषय वस्तु पर भी विस्तार से प्रकाश डाला. उन्होंने प्रश्न किया कि हज़ारों लोगों की मृत्यु का ज़िम्मेदार एक भी व्यक्ति एक दिन के लिए भी जेल क्यों नहीं गया ? क्या हज़ारों भ्रूण हत्या करना अपराध नहीं था ? गैस पीड़ितों के संघर्ष को मुआवज़े की लड़ाई क्यों बन जाने दिया. इसे मानवता की लड़ाई बनाया जाना था.

कार्यक्रम के अंत में गैस त्रासदी में काल-कवलित लोगों की स्मृति में मौन रखा गया.

अमरीका/ कैनाडा से सीधा संपर्क

भारतीय समयानुसार, सुबह ७ से १०बजे तक और शाम को ५ से ११ बजे तक अमरीका तथा कैनाडा के लेखक व पाठक, १-८४७-९४४-८८१३(नेट फ़ोन सुविधा) पर **"कथाबिंब"** *से फ़ोन द्वारा सीधा संपर्क कर सकते हैं.*

निवेदन

रचनाकारों से

"कथाबिंब" *एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि* ***विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.***

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा. रचना के साथ कवरिंग लेटर का होना आवश्यक है. अन्यथा रचना पर विचार करना संभव नहीं होगा.

३. सामान्यत: प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

४. आप ई-मेल से भी रचनाएं भेज सकते हैं. ई-मेल का पता है : kathabimb@yahoo.com. रचना की "डॉक" फ़ाइल के साथ "पीडीएफ" फ़ाइल भी भेजें. साथ में यह घोषणा भी होनी चाहिए कि विचारार्थ भेजी रचना निर्णय की सूचना प्राप्त होने तक किसी किसी अन्य पत्रिका मे नहीं भेजी जायेगी.

संपादक : डॉ. अरविंद

आमने-सामने

("कथाबिंब" के "आमने-सामने" स्तंभ में प्रकाशित २२ पुरुष-रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन.)

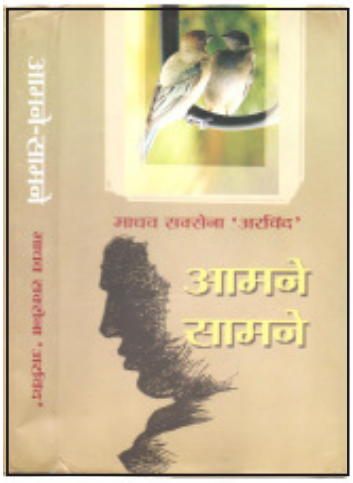

मूल्य : ४०० रु.

: प्रकाशक :
भावना प्रकाशन
१०९ ए, पटपटगंज, दिल्ली-११००९१.
फोन : २२७५६७३४,
मो ०९३१२८६९९४७

"कथाबिंब" के लेखकों और पाठकों के लिए २० % छूट. सीधे प्रकाशक से संपर्क करें.

महिला-रचनाकार : अपने आइने में

("कथाबिंब" के "आमने-सामने" स्तंभ में प्रकाशित १२ महिला-रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन.)

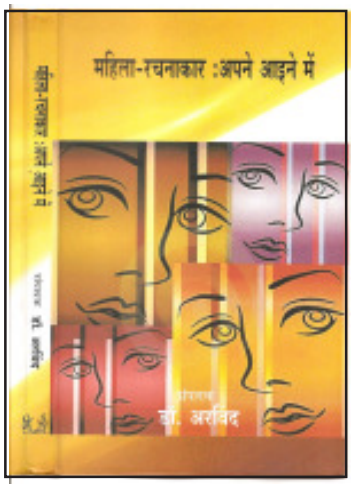

मूल्य : २५० रु.

: प्रकाशक :
भारत विद्या निकेतन
१३१, चित्तरंजन एवेन्यू,
प्रथम तल, कोलकाता-७०० ०७३

: एक मात्र वितरक :
मानव प्रकाशन
१३१, चित्तरंजन एवेन्यू,
प्रथम तल, कोलकाता-७०० ०७३

"कथाबिंब" के लेखकों और पाठकों के लिए २० % छूट. सीधे वितरक से संपर्क करें.
फ़ोन : ०३३-२२६८ ४८२२ व ०९८३१५ ८१४७९.

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१२"

अभिमत-पत्र

वर्ष २०१२ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक, रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. वर्ष २०१२ के चारों अंक **"कथाबिंब"** की वेबसाइट www.kathabimb.com पर उपलब्ध हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७, ८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें या ई-मेल करें. आप चाहें तो इस **अभिमत-पत्र** का प्रयोग करें अथवा मात्र आठ कहानियों का क्रम अलग से **एक पोस्टकार्ड** पर लिख कर भेज सकते हैं. प्राप्त अभिमतों के आधार पर पिछले वर्षों की तरह ही सर्वश्रेष्ठ कहानी (१००० रु. - एक), श्रेष्ठ कहानी (७५० रु. - दो) तथा उत्तम कहानी (५०० रु. के पांच) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें **कथाबिंब** की **त्रैवार्षिक सदस्यता (१२५ रु.)** प्रदान की जायेगी. **कथाबिंब** ही देश की एकमात्र पत्रिका है जिसने इस तरह का लोकतांत्रिक आयोजन प्रारंभ किया हुआ है. इसकी सफलता इसी में है कि ज़्यादा से ज़्यादा पाठक अपना निष्पक्ष मत व्यक्त करें. पाठकों का सहयोग ही हमारा मुख्य संबल है.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	**आपका क्रम**
१. **कैकेयी कथा** - हरिप्रसाद त्यागी	
२. **तो का करें...** ? - आशा अय्यर 'कनुप्रिया'	
३. **घर के लिए** - डॉ. देवेंद्र सिंह	
४. **और सतीश जीत गया...** - संजीव निगम	
५. **असली नाम ... चरनदास** - सैली बलजीत	
६. **रंगों का पटाक्षेप** - वंदना शुक्ल	
७. **मुंसी ताऊ** - अशोक वशिष्ठ	
८. **युगांत** - महेश कटारे 'सुगम'	
९. **शिनाख़्त** - अशोक कुमार प्रजापति	
१०. **फ़सल** - वल्लरू शिवप्रसाद	
११. **एक था हीरो...** - गोविंद उपाध्याय	
१२. **दुनिया में ...** - गजेंद्र रावत	
१३. **अन्ना की टोपी** - युगेश शर्मा	
१४. **टेबिल, यानी मेज़** - कुंवर प्रेमिल	
१५. **खारा पानी, मीठा पानी** - डॉ. रमाकांत शर्मा	
१६. **पलायन** - विवेक द्विवेदी	
१७. **तो यह बात है** ! - मणिका माहिनी	
१८. **रिश्तों की भुरभुरी ज़मीन** - मधु अरोड़ा	
१९. **प्रत्यावर्तन** - ताराचंद मकसाने	
२०. **सरोकार अपने-अपने** - नीतू सुदीप्ति 'नित्या'	